

# विषय-सूची

## प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । वह क्या है यथवा विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध की सम्यक् सीमांता कीजिए । भाषा-विज्ञान से व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और अध्यापन में कहाँ तक सहायता मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख अंगों का परिचय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. सिद्ध कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन काल से अविच्छिन्न चली आती है ।

५. आधुनिक भाषा विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का विवरण कराइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करने हुए, कारण सहित व्याख्या कीजिए कि कौन-सा मत अधिक तर्कसंगत है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा बोलियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं ।' आलोचना करते हुए बोली, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कही जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

## अथवा

भाषा के बाह्य तथा आन्तरिक रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तत्वों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों के गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

१०. भाषा का साहित्यमूलक या दार्शनिक-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण कीजिए। उस वर्गीकरण की उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए। ४२

११. भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वर्ग का सक्षिप्त परिचय दीजिए। ४८

१२. भारतीय (आर्य) मनुष्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिए। ५४

१३. ऋग-परिचयन या भाषा के दार्शनिक मूल में परिचयन किन प्रकार होता है और उस परिचयन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं? ६०

१४. बौद्ध-नियमों का परिचय दीजिए। ६४

१५. दार्शनिक-परिचयन की दृष्टि से भाषाओं का वर्गीकरण कीजिए। उदाहरण सहित दीजिए। ६८

१६. दार्शनिक-परिचयन होने के मुख्य कारण क्या हैं? उदाहरण सहित दीजिए। ७२

१७. सामान्य शक्ति मूलक भाषा का वर्गीकरण दीजिए। यह वर्गीकरण कि हिन्दी भाषा-मूलक भाषाओं की तुलना में क्या अर्थ रखता है? ७८

### समाप्ति

हिन्दी भाषा का विकास पर एक लेख लिखिए।

१८. शक्ति-परिचयन के मुख्य सिद्धान्त क्या हैं? उन सिद्धान्तों को समझाने के लिए उदाहरण दीजिए। ८४

१९. शक्ति-परिचयन के अर्थ और उदाहरण दीजिए। ८८

शक्ति-परिचयन भाषाओं की दृष्टि से परिचयन किन प्रकार होता है? ९२

२०. शक्ति-परिचयन क्या है? इसके अर्थ और उदाहरण दीजिए। ९६

२१. शक्ति-परिचयन के अर्थ और उदाहरण दीजिए। १००

२२. शक्ति-परिचयन के अर्थ और उदाहरण दीजिए। १०४

२३. शक्ति-परिचयन के अर्थ और उदाहरण दीजिए। १०८

## विषय-सूची

प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । यह क्या है क्या विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध की समझ कीजिए । भाषा-विज्ञान में व्याकरण और साहित्य के सम्बन्ध और सम्पादन में कहीं तक महाभाषा मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख कक्षों का परिचय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. निम्न कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन बान है अधिष्ठित पत्नी घाती है ।

५. प्रागुनिक भाषा विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का शिरोमूल बताइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करते हुए, कारण सहित व्याख्या कीजिए कि कौन-सा मत अधिक संतुष्टिजनक है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा मौखिक अधिक महत्वपूर्ण है।' ध्यानीयता करते हुए बोलो, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कहो जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

प्रश्न

भाषा के माह्य तथा धाम्यन्तर रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों के गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

१०. भाषा का साहित्यमूलक या शब्द-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण कीजिए। उस वर्गीकरण की उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए ४२
११. भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय दीजिए। ४८
१२. भारतीय (आर्य) मनुष्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिए। ५४
१३. रूप-परिवर्तन या भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन किन प्रकार होता है और उस परिवर्तन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं ? ६०
१४. बौद्धिक-नियमों का परिचय दीजिए। ६४
१५. अर्थ परिवर्तन की दिशाओं के आधार का उल्लेख कीजिए। उपयुक्त उदाहरण भी दीजिए। ६८
१६. शब्दार्थ में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं ? उपयुक्त उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। ७३
१७. सहस्रान्त ध्वनि-समूह का वर्गीकृत परिचय देकर यह बताइये कि हिन्दी ध्वनि-समूह से उसकी तुलना में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं ? ७८
- अथवा
- हिन्दी ध्वनियों के विकास पर एक नया लिखिये।
१८. ध्वनि-वर्गीकरण के मुख्य सिद्धान्त क्या माने जाते हैं ? यह बताने हुए ध्वनियों का वर्गीकरण कीजिए। ८३
१९. ध्वनि-परिवर्तन के रूप (दशाएँ) और कारणों की संक्षेपित विवेचना कीजिए। ८८
- अथवा
- 'ध्वनि प्रत्यय-लापन की दशा में परिवर्तन होती है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
२०. ध्वनि नियम क्या है ? प्रिय हृत् ध्वनि-नियम (Gram's Law) की संक्षेपित समीक्षा कीजिए। क्या ध्वनि-नियम भी उन्नी प्रकार प्रचाल्य हैं जैसे अन्य वैज्ञानिक नियम ? ९६
२१. आसन्न और वन्तर के ध्वनि-नियम गणेश्वर पर दृष्टि डालने हुए अन्य ध्वनि-नियमों का विवेचन कीजिए। १०८
२२. भारतीय-परिवार की विशेषताओं और सहस्र पर प्रकाश डालने हुए उसके विभाजन का भी परिचय दीजिए। १११

# विषय-सूची

प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । वह क्या है प्रयत्न विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध को सम्यक् समझना कीजिए । भाषा-विज्ञान में व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और अध्यापन में कहाँ तक सहायता मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख अंगों का परिचय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. सिद्ध कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन काल से अविच्छिन्न चली आती है ।

५. आधुनिक भाषा विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का दिग्दर्शन कराइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करने हुए, कारण सहित व्याख्या कीजिए कि कौन-सा मत अधिक तर्कसंगत है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा बोलियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं ।' आलोचना करते हुए बोली, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कही जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

अथवा

भाषा के बाह्य तथा आन्तरिक रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों का गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

१०. भाषा का आकृतिमूलक या शब्द-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण कीजिए। उस वर्गीकरण की उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए। ४२

११. भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय दीजिए। ४८

१२. भारोपीय (आर्य) मनुष्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिए। ५४

१३. रूप-परिवर्तन या भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन किम प्रकार होता है और उस परिवर्तन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं ? ६०

१४. बौद्धिक-नियमों का परिचय दीजिए। ६४

१५. आर्य-परिवर्तन की दिशाओं के आधार का उल्लेख कीजिए। अप्रयुक्त उदाहरण भी दीजिए। ६८

१६. दशार्थ में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं ? अप्रयुक्त उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। ७३

१७. गरुड ध्वनि-समूह का वर्गीकृत परिचय देकर यह बतनाइये कि हिन्दी ध्वनि-समूह से उसकी तुलना में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं ? ७८

अथवा

हिन्दी ध्वनियों के विकास पर एक लेख लिखिये।

१८. ध्वनि-वर्गीकरण के मुख्य सिद्धान्त क्या माने जाते हैं ? यह बतनाइये हुए ध्वनियों का वर्गीकरण कीजिए। ८३

१९. ध्वनि-परिवर्तन के रूप (दशाएँ) और कारणों की मोटाहट से विवेचना कीजिए। ८६

अथवा

'ध्वनि प्रत्यक्ष-नापव की दशा में परिवर्तित होती है।' इस बयन को स्पष्ट कीजिए।

२०. ध्वनि नियम क्या है ? किम हूत ध्वनि-नियम (Gram's Law) की सन्दर्भ समीक्षा कीजिए। क्या ध्वनि-नियम भी उगी प्रकार प्रकाट्य है जैसे अन्य वैज्ञानिक नियम ? ९६

२१. प्रागर्गल और बनेर के ध्वनि-नियम गतोधन पर दृष्टि डालने हुए अन्य ध्वनि-नियमों का विवेचन कीजिए। १०८

२२. भारोपीय-परिवार की विवेचनाओं और ग्रहण पर प्रकाश डालते हुए उसके विभाजन का भी परिचय दीजिए। १११

# विषय-सूची

प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । यह क्या है क्या विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध को सम्यक् समझना सीखिए । भाषा-विज्ञान में व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और सम्पादन में कहीं तक महत्त्वता मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख धर्मों का परिचय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. निम्न कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा पट्टन प्राचीन काल से अविच्छिन्न पत्ती जाती है ।

५. भाषा-विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का विवेचन कराइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करो हुए, कारण सहित समझा कीजिए कि कौन-सा मत अधिक तर्कसंगत है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा मौखिक अधिक महत्वपूर्ण है ।' आलोचना करते हुए योती, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कही जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

अथवा

भाषा के बाह्य तथा आन्तरिक रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों ५ गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

१०. भाषा का साहित्यमूलक या शब्द-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण कीजिए। उस वर्गीकरण की उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए। ४२
११. भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय दीजिए। ४८
१२. भारोपीय (आर्य) मनुष्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिए। ५४
१३. रूप-परिवर्तन या भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन किम प्रकार होता है और उस परिवर्तन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं? ६०
१४. बौद्धिक-नियमों का परिचय दीजिए। ६४
१५. आर्य परिवर्तन की दिशाओं के आधार का उल्लेख कीजिए। उपयुक्त उदाहरण भी दीजिए। ६८
१६. शब्दार्थ में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं? उपयुक्त उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। ७३
१७. सम्पूर्ण ध्वनि-समूह का वर्गीकृत परिचय देकर यह बताइये कि हिन्दी ध्वनि-समूह में उसकी तुलना में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं? ७८
- अथवा
- हिन्दी ध्वनियों के विकास पर एक लेख लिखिये।
१८. ध्वनि-वर्गीकरण के मुख्य सिद्धान्त क्या माने जाते हैं? यह बतलाते हुए ध्वनियों का वर्गीकरण कीजिए। ८३
१९. ध्वनि-परिवर्तन के रूप (दशाएँ) और कारणों की मोशहफ़ा विवेचना कीजिए। ८६
- अथवा
- ‘ध्वनि प्रत्यय-तापव की दशा में परिवर्तित होती है।’ इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
२०. ध्वनि नियम क्या हैं? विम कृत ध्वनि-नियम (Gram's Law) की सम्यक् समीक्षा कीजिए। क्या ध्वनि-नियम भी उनी प्रकार कहाव्य हैं जंगे अन्य वैज्ञानिक नियम? ९६
२१. प्रागर्त और अनंत के क्रम-नियम मनोपन पर दृष्टि डालते हुए अन्य ध्वनि-नियमों का विवेचन कीजिए। १०८
२२. भारोपीय-परिवार की विवेचनाओं और महत्व पर प्रकाश डालते हुए उसके विभाजन का भी परिचय दीजिए। १११



# विषय-सूची

प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । यह क्या है प्रकाश विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध की समझ को समझा दीजिए । भाषा-विज्ञान में व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और अध्ययन में क्या तक महत्त्व मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख घटकों का परिचय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. निम्न कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन काल से अस्तित्व में आयी है ।

५. प्राचिन भाषा विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का विवरण बताइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करते हुए, कारण सहित समझा दीजिए कि कौन-सा मत अधिक तर्कसंगत है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की समझा योक्तियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं ।' आलोचना करते हुए, बोली, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कही जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों का विवेचन उदाहरण सहित कीजिए ।

प्रश्न

भाषा के बाह्य तथा आन्तरिक रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों में गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

१०. भाषा का प्राकृतिमूलक या शब्द-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण कीजिए। उस वर्गीकरण की उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए। ४२

११. भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय दीजिए। ४८

१२. भारतीय (घ्रायं) मनुष्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिए। ५४

१३. रूप-परिवर्तन या भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन किम प्रकार होता है और उस परिवर्तन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं ? ६०

१४. बौद्धिक-नियमों का परिचय दीजिए। ६४

१५. अथ परिवर्तन की विधाओं के आधार का उल्लेख कीजिए। उपयुक्त उदाहरण भी दीजिए। ६८

१६. शब्दांश में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं ? उपयुक्त उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। ७३

१७. सरल ध्वनि-समूह का वर्गीकृत परिचय देकर यह बताइये कि हिन्दी ध्वनि-समूह से उसको तुलना में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं ? ७८

अथवा

हिन्दी ध्वनियों के विकास पर एक लेख लिखिये।

१८. ध्वनि-दर्पोद्धारण के मुख्य सिद्धान्त क्या माने जाते हैं ? यह यन्त्रादि द्वारा क्या-क्या वर्गीकरण कीजिए। ८३

१९. ध्वनि-परिवर्तन के रूप (दशाएँ) और कारणों की मोटाहट विवेचना कीजिए। अथवा ८८

'ध्वनि प्रयत्न-लापव की दशा में परिवर्तित होती है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

२०. ध्वनि नियम क्या है ? ग्रिम का ध्वनि-नियम (Grims Law) की सम्यक् समीक्षा कीजिए। क्या ध्वनि-नियम भी उसी प्रकार व्याप्य है जैसे अन्य वैज्ञानिक नियम ? ९९

२१. आर्गन और बर्नर के ग्रिम-नियम ससोधन पर दृष्टि डालते हुए ध्वनि-नियमों का विवेचन कीजिए। १०८

२२. भारतीय परिवार की विशेषताओं और महत्व पर प्रकाश डालते हुए उसके विकास का भी परिचय दीजिए। १११

## विषय-सूची

### प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । वह कला है अथवा विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध की सम्यक् सीमांसा कीजिए । भाषा-विज्ञान से व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और अध्यापन में कहाँ तक सहायता मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख अंगों का परिचय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. सिद्ध कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन काल से अविच्छिन्न चली आती है ।

५. आधुनिक भाषा विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का दिग्दर्शन कराइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करते हुए, कारण सहित व्याख्या कीजिए कि कौन-सा मत अधिक तर्कसंगत है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा बोलिया अधिक महत्वपूर्ण है ।' आलोचना करते हुए बोली, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कहो जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

### अथवा

भाषा के बाह्य तथा आन्तरिक रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों में गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

१०. भाषा का साहित्यमूलक या शब्द-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण कीजिए। उस वर्गीकरण की उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए ४२

११. भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय दीजिए। ४८

१२. भारोपीय (आर्य) मनुष्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिए। ५४

१३. रूप-परिवर्तन या भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन किम प्रकार होता है और उस परिवर्तन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं ? ६०

१४. बौद्धिक-नियमों का परिचय दीजिए। ६४

१५. आर्य परिवर्तन की दिशाओं के आधार का उल्लेख कीजिए। उपयुक्त उदाहरण भी दीजिए। ६८

१६. शब्दाद्य में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं ? उपयुक्त उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। ७३

१७. सम्पूर्ण ध्वनि-समूह का वर्गीकृत परिचय देकर यह बताइये कि हिन्दी ध्वनि-समूह से उसकी तुलना में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं ?

अथवा

हिन्दी ध्वनियों के विकास पर एक लेख लिखिये।

१८. ध्वनि वर्गीकरण के मुख्य सिद्धान्त क्या माने जाते हैं ? यह यत्नाते हुए ध्वनियों का वर्गीकरण कीजिए। ८३

१९. ध्वनि-परिवर्तन के रूप (दशाएँ) और कारणों की मोटाहट पर विवेचना कीजिए। ८८

अथवा

ध्वनि प्रत्यक्ष-लापव की दशा में परिवर्तित होती है। इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

२०. ध्वनि नियम क्या है ? इस कृत ध्वनि-नियम (Grammar Law) की सम्यक् समीक्षा कीजिए। क्या ध्वनि-नियम भी उगी प्रकार कहाट्य है जैसे अन्य वैज्ञानिक नियम ? ९९

२१. सामाजिक और सन्दर्भ के प्रत्येक नियम समीक्षण पर दृष्टि डालते हुए अन्य ध्वनि-नियमों का विवेचन कीजिए। १०८

२२. भारोपीय-परिवार की विशेषताओं और महत्व पर प्रकाश डालते हुए उसके विकास का भी परिचय दीजिए। १११

# विषय-सूची

प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । यह क्या है क्या विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध की समझ भीभाषा कीजिए । भाषा-विज्ञान में व्याकरण और साहित्य के सम्बन्धन और सम्पादन में कहीं तक महत्ता मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख प्रयोगों का परिषय दीजिए तथा उनको उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. निम्न कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन काल से परिचित है पची प्रानी है ।

५. प्रागुनिक भाषा विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का विवरण कराइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करते हुए, कारण सहित व्याख्या कीजिए कि कौन-सा मत अधिक तर्कमय है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की विशेषता योतियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं ।' आलोचना करते हुए योती, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कही जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

अथवा

भाषा के व्यापक तथा सामान्य रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों ५ गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

३४. हिन्दी सर्वनामों के रूप देकर उनकी व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालिये। १९६

३५. हिन्दी क्रिया के बालो में संवृत बालो के तीन में रूप अवरोध रह गये हैं ? दोनो का सम्बन्ध स्थापित कीजिये। १७१

अथवा

हिन्दी क्रियाओं की व्युत्पत्ति बताइये।

३६. हिन्दी क्रिया की काल-रचना में वृद्धन्तो के महत्व का विवेचन कीजिये। १७७

३७. सत्यावाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति स्पष्ट कीजिये। १८०

३८. हिन्दी भाषा के कुछ प्रमुख शब्दों की व्युत्पत्ति बताइये। १८४

३९. हिन्दी के उपसर्गों का संक्षिप्त परिचय दीजिये। १८८

४०. स्वराघात का भेदो सहित विवेचन करने हुए हिन्दी में उसकी विवर्धित स्थिति पर प्रकाश डालिए। १८९

४१. हिन्दी-भाषा की वैज्ञानिक परिभाषा दीजिये तथा उसके साहित्यिक रूप पर दृष्टि डालते हुए गरी बोली की उत्पत्ति और विकास पर एक संक्षेप लेख लिखिये। १९१

४२. दक्षिणी भाषा के विकास और साहित्य का परिचय देते हुए गरी बोली से उसका सम्बन्ध बताइये। १९७

४३. देवनागरी के उद्गम और विकास पर एक लेख लिखिए तथा उसके गुण और दोषों का विवेचन करते हुए कुछ सुधारात्मक सुभाव प्रस्तुत कीजिये। २०१

## परिशिष्ट

प्रश्न

४४. स्पष्ट कीजिए—

(क) भाषा की परिभाषा, (ख) भाषा ध्वनि सम्पत्ति है, (ग) भाषा सयोगावरण से वियोगावरण की ओर जाती है, (घ) भाषा-वक्त्र, (ङ) भाषा की सामान्य प्रवृत्तियाँ (संकेत रूप में)।

४५. भाषा विज्ञान से अन्य विषयों का सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए। २१०

४६. वाक्यों के प्रकार और वाक्य-गठन में परिचय के कारण कीजिये। २१४

पृष्ठ

२०७

१६. भिन्न-भिन्न व्यक्ती हिन्दी वाक्यों के मूल रूप (Direct or Nominative Form) तथा विवृत रूप (Oblique Form) दीजिए तथा उन वाक्यों की व्युत्पत्ति पर एक टिप्पणी लिखिए।

१७. हिन्दी तथा संस्कृत वाक्यों की वाच्य-रचना के मूल सिद्धान्तों में क्या अन्तर हो गया है ? संक्षेप में उत्तर दीजिए।

३४. हिन्दी सर्वनामों के रूप देकर उनकी व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालिये। १६६

३५. हिन्दी क्रिया के कालों में संस्कृत कालों के कौन से रूप अवशेष रह गये हैं ? दोनो का सम्बन्ध स्थापित कीजिये। १७१

अथवा

हिन्दी क्रियाओं की व्युत्पत्ति बताइये।

३६. हिन्दी क्रिया की काल-रचना में कृदन्तों के महत्व का विवेचन कीजिये। १७७

३७. सग्रावाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति स्पष्ट कीजिये। १८०

३८. हिन्दी भाषा के कुछ प्रमुख शब्दों की व्युत्पत्ति बताइये। १८४

३९. हिन्दी के उपमार्गों का संक्षिप्त परिचय दीजिये। १८८

४०. स्वराधातु का भेदो सहित विवेचन करने हुए हिन्दी में उसकी विवर्तित स्थिति पर प्रकाश डालिए। १८९

४१. हिन्दी-भाषा की वैज्ञानिक परिभाषा दीजिये तथा उसके साहित्यिक रूप पर दृष्टि डालते हुए लंदी बोली की उत्पत्ति और विकास पर एक संक्षेप लिखिये। १९१

४२. दक्खिनी भाषा के विकास और साहित्य का परिचय देने हुए लंदी बोली से उसका सम्बन्ध बताइये। १९७

४३. देवनागरी के उद्गम और विकास पर एक संक्षेप लिखिए तथा उसके गुण और दोषों का विवेचन करने हुए कुछ सुधारार्थक सुझाव प्रस्तुत कीजिये। २०१

## परिक्षिष्ट

प्रश्न

पृष्ठ

४४. स्पष्ट कीजिए—

२०७

(क) भाषा की परिभाषा, (ख) भाषा अक्षित सम्पत्ति है, (ग) भाषा उपयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर जाती है, (घ) भाषा-व्यव, (ङ) भाषा की सामान्य प्रवृत्ति (संकेत रूप में)।

४५. भाषा विज्ञान से अन्य विषयों का सम्बन्ध स्थापित कीजिए। २१०

४६. वाक्यों के प्रकार और वाक्य-गठन में परिवर्तन के कारण कीजिये। २१४



४७. स्पष्ट कीजिये—

(क) ध्वनिमन्त्र, (ख) भाषण-ध्वनि और ध्वनिमात्र का अन्तर  
(ग) क्लिक (Click) ध्वनियाँ, (घ) स्रोत ग्रह ।

४८. ध्वनि-नियमों के विरुद्ध मादृश्य का क्या अर्थ है ? उसके प्रभाव और विस्तार की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए ।

४९. 'यूरोप में सश्रुत की रोज ने तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की नींव डाली ।' समीक्षा कीजिए ।

५०. मूल भारोपीय भाषाओं और संस्कृत में अपभ्रुति (Vowel gradation) की स्थिति पर तर्क उपस्थित कीजिए ।

अथवा

अपभ्रुति या स्वरक्रम (Ablaut) पर संस्कृत का सन्दर्भ देते हुए एक लेख लिखिये । क्या पाणिनि की गुण-वृद्धि और सम्प्रसारण भाषा-वेत्ताओं की दृष्टि से उचित है ?

५१. परिचयात्मक टिप्पणियाँ लिखिये—

बान्टू भाषा, द्रविड भाषा, मुँडा भाषाएँ, स्लाव भाषाएँ, पंजाबी अपभ्रंश, सहंदा, बिहारी भाषा, मध्य-पहाड़ी, उच्च हिन्दी, रेस्ता, सर विलियम जोन्स, यॉकोव ग्रिम, फ्रान्स वॉय, रुडल्फ राँय, फ्रेड्रिक्स मैक्समूलर, जार्ज ब्राह्म प्रियसंन, डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी, शोरसेनी, शतम् तथा केन्टुम् समुदाय, हरियानी, छत्तीसगढ़ी, उर्दू, दक्खिनी, हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुस्तानी, ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, यास्क, पाणिनि, कात्यायन ।

५२. हिन्दी के राष्ट्र-भाषा, राजभाषा, साहित्यिक भाषा तथा मातृ-भाषा के पहलुओं पर एक सक्षिप्त तुलनात्मक टिप्पणी लिखिये ।

५३. टिप्पणी लिखिए—

अभिधुति स्फुटवाच्य (Articulate speech), मूर्द्धन्यीकरण (cerebralisation), व्युत्पत्ति-शास्त्र के नियम, भाषा पर आधारित प्रागैतिहासिक खोज (Linguistic-Palaeontology), वेदों में प्राकृत-तत्त्व, आदिम भारोपीय भाषा के स्वर, चिह्न-लिपि, आह्वी लिपि, प्रत्यय, विभक्ति, नाद, स्वांस, तामस्य-नियम, अथ-विज्ञान, उच्चारण-अवयव, ध्वनि-ग्राम, स्वर-भक्ति तथा आगम ।

प्रश्न १—भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए। यह क्या है अथवा  
विज्ञान ?

भाषा-विज्ञान

भाषा-विज्ञान दो शब्दों में निमित्त है—भाषा और विज्ञान। भाषा मनुष्य के परस्पर विचार-विनिमय का साधन है। मानव धरने कतिपय ध्वनि-यंत्रों का प्रयोग कर उनमें कई प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण कर उनके द्वारा अपने भावों तथा विचारों का प्रसारण करता है। यह विचार-विनिमय और भाव-प्रवाहान् भाषा ध्वन्यात्मक रूप में होता है। विज्ञान का अर्थ शास्त्रीय ज्ञान तथा अध्ययन है। विज्ञान का कार्य किसी वस्तु का सम्यक् परीक्षण करना, सिद्धान्त निर्धारित करना तथा कारणों का पूर्ण समाधान करना है। भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना भाषा-विज्ञान का प्रमुख कार्य है। भाषा-विज्ञान या भाषा-शास्त्र मानव-भाषा के समस्त रूपों, चाहे वे सम्य या असम्य जातियों के द्वारा प्रयुक्त होते हों, विकसित या अविकसित स्थिति में हों, उन सबका सम्यक् विवेचन करता है। एक भाषा-वैज्ञानिक किसी भाषा का अध्ययन उस की भाव-व्यञ्जना का साधन मानकर करता है। वह एक घोर प्रागैतिहासिक काल की भाषा का अध्ययन करता है; दूसरी ओर प्राचीन भाषाओं, देशी प्राकृत रूपों तथा आधुनिक अक्षरित भाषाओं एवं विभाषाओं का अध्ययन करता है।

भाषा-विज्ञान का अध्ययन करने की प्रायः तीन प्रणालियाँ पाई जाती हैं—

१. पर्याप्ततात्मक या विवरणात्मक प्रणाली।

२. ऐतिहासिक प्रणाली।

३. मूलतात्मक प्रणाली।

विवरणात्मक प्रणाली में प्रायः जीवन भाषाओं का ही अध्ययन होता है, प्राचीन भाषा भी इस श्रेणी में आ सकती है। इस पद्धति के अन्तर्गत किसी

निर्दिष्ट बात में किसी भाषा में जोन-जोन की ध्वनियों की प्राकृतिक प्रकृति का भी, जिस प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता पद-रचना तथा वाक्य-रचना की बातें परिभाषी भी, आदि का सर्व-पर उल्लिखित किया जाता है। भाषा-विज्ञान के विज्ञान इन प्रयोगों के ध्वनि, रूप, वाक्य तथा मरणा का ही अध्ययन करते हैं।

भाषा विज्ञान के अध्ययन की दूसरी सीढ़ि ऐतिहासिक है। ऐतिहासिक अध्ययन करने समय हम विवरणात्मक प्रणाली की होना नहीं बर सबने बसोकि ऐतिहासिक भाषा विज्ञान एक प्रकार भाषा के विभिन्न बातों का विवरणात्मक अध्ययन का परित्याग है। मुगार भाषा में परिवर्तन या विचार होते रहते हैं। इन विचार के दनाएँ क्या हैं ? परिस्थितियों के भाषा परिवर्तन में योग क्या है ? ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान इन सभी प्रश्नों का समाधान उपस्थित करता है। इसके पूरे जीवन, उसके इतिहास और विकास पर ध्वनि, रूप आदि की विचार किया जाता है।

तुलनात्मक प्रणाली भाषा-अध्ययन का तीसरा मार्ग है। यह अध्ययन स्वपूर्ण है। इसके कारण भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। इस प्रणाली में किसी भाषा के ऐतिहासिक तथा वर्णनात्मक दोनों तथ्यों के अध्ययन को प्रस्तुत करते हुए सभी देशों एवं सभी वर्गों की भाषा का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित किया जाता है। उपर्युक्त दोनों तथ्यों का समाहार तथा समन्वय इस तुलनात्मक पद्धति की विशेषता है। ऐतिहासिक या पद-रचना की दृष्टि से परस्पर सम्बन्धित दो या अधिक भाषा का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। यही नहीं, विभिन्न प्रकृति की भाषा की तुलना भी इसके अन्तर्गत की जा सकती है। परन्तु अधिकांश तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग एक ही परिवार या वंश से सम्बद्ध भाषाओं की ध्वनियों, पद-रचना, शब्द-कोष तथा वाक्य रचना के साम्य और वैषम्य के अध्ययन के लिए किया जाता है। यह एक ही भाषा के परवर्ती रूपों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से किया गया हो या अनेक भाषाओं के साथ। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश, ब्रजभाषा, भोजपुरी, खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन एक कोटि का होगा, संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन का दूसरी ओणी का। ऐतिहासिक क्रम का ध्यान में

हुये एक साथ घनेक भाषाओं की विकसित दशा का भी तुलनात्मक परीक्षा जाता है ।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन के दो रूप हैं—एक तो भाषाओं का वर्णनात्मक, तात्त्विक या ऐतिहासिक अध्ययन और दूसरे अध्ययन के आधार पर भाषा उत्पत्ति, उसकी प्रारम्भिक प्रवृत्ति, उसके विकास तथा गठन के सम्बन्ध में विज्ञानों का अध्ययन और निर्धारण । ये दोनों हर एक दूसरे के महा-हैं ।

भाषा

डा० इयामसुन्दरदास — भाषा-विज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट और उसके विकास की व्याख्या करता है ।' — भाषा-रहस्य

'सब पूछा जाय तो बिना तुलना के अध्ययन वैज्ञानिक हो ही नहीं सकता, तो तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की ही भाषा-विज्ञान कहने है ।'

—भाषा-विज्ञान

डा० भोलानाथ तिवारी — 'भाषा-विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा—लिपि, बर्ण और सामान्य वा वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टि अध्ययन और तद्विषयक विज्ञानों का निर्धारण किया गया हो ।'

डा० गुप्ते — 'जिसी विविष्ट परिवार के तुलनात्मक भाषा विज्ञान का ध्येय परिवार की भाषाओं की पारस्परिक समानताओं की जाय करना तथा उन की व्याख्या करना है ।'

भाषा-विज्ञान विज्ञान है या कला

जैसा कि भाषा-विज्ञान नाम से विदित होता है कि यह भाषा का विज्ञान है, कोई व्यक्ति सहज ही अनुमान कर सकता है कि यह सब ही विज्ञान रूप का विज्ञान है । परन्तु विज्ञान में विशेष ज्ञान के अनिवार्य कुछ अन्य विशेषण भी हैं । समुचित रूप से विज्ञान का कार्य किसी वस्तु का सम्यक् परीक्षण करना, कारणों का पता लगाना तथा तुलना तथा प्रयोग के द्वारा निश्चय निश्चिन करना है । ये नियम तथा निश्चय सावधानी और सावधानीपूर्ण हैं । उन में विचार तथा व्यवहार के लिए समझ भी स्थान नहीं है । 'हम सब जानते हैं' की भाँति ही होती है, आदि-आदि नियम स्थापन तथा निश्चिन है । परन्तु



निर्दिष्ट बात में द्विगो भाषा में कौन-कौन सी ध्वनियाँ थी (या हैं), उनही प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ क्या थी, किन् प्रकार के कर्णों का प्रयोग होता था, उनही पद-रचना तथा वाक्य-गठन की क्या परिपाटी थी, आदि का समीक्षात्मक परि-  
क्षय उपस्थित किया जाता है। भाषा-विज्ञान के विद्वान् इन प्रश्नों में भाषा के ध्वनि, रूप, वाक्य तथा वाक्य-गठन का ही अध्ययन करते हैं।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन को दूसरी रीति ऐतिहासिक है। किसी भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन करते समय हम विवरणात्मक प्रणाली की सर्वथा व्यव-  
हृलना नहीं कर सकते क्योंकि ऐतिहासिक भाषा विज्ञान एक प्रकार से किसी भाषा के विभिन्न कालों का विवरणात्मक अध्ययन का परिणाम है। भाषा-  
नुसार भाषा में परिवर्तन या विकार होते रहते हैं। इस विकार के कारण या दशाएँ क्या हैं ? परिस्थितियों के भाषा परिवर्तन में योग क्या है ? ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान इन सभी प्रश्नों का समाधान उपस्थित करता है। इसमें भाषा के पूरे जीवन, उसके इतिहास और विकास पर ध्वनि, रूप आदि की दृष्टि से विचार किया जाता है।

तुलनात्मक प्रणाली भाषा-अध्ययन का तीसरा मार्ग है। यह अत्यन्त मह-  
त्वपूर्ण है। इसके कारण भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक हो गया है। इस प्रणाली में किसी भाषा के ऐतिहासिक तथा वर्णनात्मक दोनों पद्ध-  
तियों के अध्ययन को प्रस्तुत करते हुए सभी देशों एवं सभी वर्गों की भाषाओं का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित किया जाता है। उपर्युक्त दोनों पद्ध-  
तियों का समाहार तथा समन्वय इस तुलनात्मक पद्धति की विशेषता है। इसमें ऐतिहासिक या पद-रचना की दृष्टि से परस्पर सम्बन्धित दो या अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। यही नहीं, विभिन्न प्रकृति की भाषाओं की तुलना भी इसके अन्तर्गत की जा सकती है। परन्तु अधिकांश तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग एक ही परिवार या वंश से सम्बद्ध भाषाओं की ध्वनियों, पद-  
रचना, शब्द-कोष तथा वाक्य रचना के साम्य और वैषम्य के अध्ययन के लिए किया जाता है। यह एक ही भाषा के परवर्ती रूपों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से किया गया हो या अनेक भाषाओं के साथ। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश या व्रजभाषा, मगधी पड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन एक कोटि का होगा, संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन का दूसरी श्रेणी का। ऐतिहासिक क्रम का ध्यान में



निश्चित काल में किसी भाषा में कौन-कौन सी ध्वनियाँ थी (या हैं), उनके प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ क्या थी, किस प्रकार के रूपों का प्रयोग होता था, उनके पद-रचना तथा वाक्य-गठन की क्या परिपाटी थी, आदि का समीक्षात्मक परिचय उपस्थित किया जाता है। भाषा-विज्ञान के विद्वान् इस प्रणाली में भाषा के ध्वनि, रूप, वाक्य तथा सघटना का ही अध्ययन करते हैं।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन की दूसरी रीति ऐतिहासिक है। किसी भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन करते समय हम विवरणात्मक प्रणाली की सर्वथा अवहेलना नहीं कर सकते क्योंकि ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान एक प्रकार से किसी भाषा के विभिन्न कालों का विवरणात्मक अध्ययन का परिणाम है। वास्तव-नुसार भाषा में परिवर्तन या विकार होते रहते हैं। इस विकार के कारण या दशाएँ क्या हैं? परिस्थितियों के भाषा परिवर्तन में योग क्या है? ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान इन सभी प्रश्नों का समाधान उपस्थित करता है। इसमें भाषा के पूरे जीवन, उसके इतिहास और विकास पर ध्वनि, रूप आदि की दृष्टि से विचार किया जाता है।

तुलनात्मक प्रणाली भाषा-अध्ययन का तीसरा मार्ग है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके कारण भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक हो गया है। इस प्रणाली में किसी भाषा के ऐतिहासिक तथा वर्णनात्मक दोनों पद्धतियों के अध्ययन को प्रस्तुत करते हुए सभी देशों एवं सभी वर्गों की भाषाओं का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित किया जाता है। उपर्युक्त दोनों पद्धतियों का समाहार तथा समन्वय इस तुलनात्मक पद्धति की विशेषता है। इसमें ऐतिहासिक या पद-रचना की दृष्टि से परस्पर सम्बन्धित दो या अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। यही नहीं, विभिन्न प्रकृति की भाषाओं की तुलना भी इसके अन्तर्गत की जा सकती है। परन्तु अधिकांश तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग एक ही परिवार या वंश से सम्बद्ध भाषाओं की ध्वनियों, पद-रचना, मन्द-कोष तथा वाक्य रचना के साम्य और वैषम्य के अध्ययन के लिए किया जाता है। यह एक ही भाषा के परिवर्ती रूपों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से किया गया हो या अनेक भाषाओं के साथ। मसूत, प्राकृत तथा अपभ्रंश या ब्रजभाषा, मगधी खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन एक कोटि का होगा, संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन का दूसरी र्थनी का। ऐतिहासिक क्रम का ध्यान में





भाषा-विज्ञान विज्ञान बड़े जाने पर भी उसमें इस निश्चयात्मिक कृति का अभाव है। ये नियम विज्ञान के नियमों की भाँति सर्वत्र प्रकाश्य नहीं हैं। भाषा-विज्ञान के नियमों में एकाधिक अपवाद भी मिलते हैं। भाषा परिवर्तनशील है; अतः कभी-कभी नियम-विच्छेद नये शब्द और ध्वनियाँ भी देव-काल और वातावरण के प्रभाव से पा जायी है। परिणाम-स्वरूप विज्ञान की भाँति इसके नियम सर्वत्र, सार्वकालिक और सार्वत्रिक नहीं हैं। 'मर्म' और 'कर्म' रूप की दृष्टि से समान है, किन्तु एक का विकास 'मर्म' के तथा दूसरे का 'कर्म' के रूप में हुआ है। यह विषय विज्ञान शुद्ध वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। ऐसी परिस्थिति में हमें विनित्य और अनुमान पर आश्रित होना पड़ता है।

कला का एकमात्र लक्ष्य मनोरंजन तथा सौन्दर्य की मृष्टि करना है। सुन्दरता का उपासक अपनी कृति के लिये कला को क्रीड में आसरा लेता है। परन्तु भाषा-विज्ञान का प्रधान कार्य इससे सर्वदा भिन्न है। वह न तो मनोरंजन का साधन है और न सुन्दर कृति ही है। दूसरे कला व्यक्ति की कृति है तो भाषा समाज की सम्पत्ति। दोनों में कोई साम्य नहीं। भाषा-विज्ञान विज्ञान के अधिक निकट है। विज्ञान की भाँति भाषा-विज्ञान भी सिद्धांत अथवा नियम निर्धारण से सम्बन्ध रखता है। जिस प्रकार विज्ञान में किसी वस्तु का सम्यक् परीक्षण करके उसके सम्बन्ध में नियम निर्धारित किये जाते हैं उसी प्रकार भाषा-विज्ञान में भी भाषा के उत्पत्ति, रचना, विकास आदि सभी तत्वों के विस्तरेण से सामान्य नियम निश्चित कर लिये जाते हैं। भाषा की सम्यक् व्याख्या प्रस्तुत करना ही भाषा-विज्ञान का कार्य है।

इस प्रकार भाषा-विज्ञान भौतिक शास्त्र, गणित, रसायन शास्त्र की भाँति अपवाद-रहित तथा विकल्प-रहित ज्ञान न होते हुए भी कला नहीं कहा जा सकता है, अपितु, विज्ञान के साग्निध्य के कारण इसे विज्ञान कहना ही उचित है।

प्रश्न २—भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध की सम्यक् सीमा का कीजिए। भाषा-विज्ञान से व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और अभ्यास में कहीं तक सहायता मिलती है, स्पष्ट कीजिए। (दि० वि० १६११)



करता है। भाषा के जीवित तथा प्रयुक्त रूप में भाषा-विज्ञान का सामान्य है। घट भाषा-विज्ञान का जोन प्राथमिक व्याकरण और उच्च विकसित या परिवर्धित, प्राचीन या प्रसिद्ध भाषा का प्रत्येक छन्द समान महत्व रखा है। भाषा-विज्ञान का कार्य सामान्य रूप से भाषा के दिग्दर्शन तथा विवेचन करना है। 'प्रत्येक भाषा विकसित होती है' इस सिद्धांत पर भाषा-विज्ञान विश्वास करता है। इसके ठीक विपरीत व्याकरण पुरानी पद्धति को अपनाता है। विज्ञान मंदिर व्याकरण के प्राचीन सिद्धांतों ही साधु और तिष्ठ मानते हैं, नव-निर्मित छन्द उन्हें लटको है और वे 'प्रपञ्च' उपाधि से विभूषित करते हैं। संस्कृत-नव-विकसित भाषा में अधिकतर संस्कृत के लक्ष्य शब्दों का प्रयोग किया गया था पुरातनक वैयाकरणों ने ऐसी भाषा को प्राकृत भाषा प्रतीति जन-माधारण को न.पा नाम दिया। क्योंकि उसमें 'धर्म' का 'धम्म' और 'कर्म' का 'कम्म' नवीन शब्दों का प्रयोग होने लगा था। प्रायेण सत्तर प्राकृत के साहित्य-नद पर प्राचीन हो जाने पर एक नव विकसित भाषा अस्तित्व में आई। उसे भी इन प्राचीन वैयाकरणों ने प्रपञ्च भाषा प्रतीति विगड़ी हुई भाषा नाम दिया। प्रायेण प्राकृत और प्रपञ्च के रूपों को भी साधु मानना पड़ा। प्रायेण भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत, ध्वनि-विचार में हिन्दी के अधिकतर प्रकारों का व्यवहार माने जाने लगे हैं, क्योंकि प्रायेण हिन्दी-भाषा-भाषियों का उच्चारण 'राम' न होकर 'राम्' है। यदि यह परिवर्तन भाषा में कर दिया जाय तो वैयाकरण प्रोत्थित हो उठेंगे और संभवतः इसका विरहकार भी हो। चाहे अन्त में यह तथ्य उन्हें स्वीकार करना पड़े।

(३) व्याकरण भाषा-विज्ञान के पद-चिह्नों का अनुगमन करता है। भाषा के नये विकसित रूपों का ज्ञान भाषा-विज्ञान कराता है और कालान्तर में व्याकरण उसको सिद्ध करता है। व्याकरण भाषा की शुद्धि-प्रशुद्धि पर विचार करता है और भाषा-विज्ञान सामान्य रूप से उसका तर्क-सम्मत अध्ययन कर सिद्धांत निरूपण करता है। 'भाषा का वर्तमान रूप क्या है? यह वैयाकरण बतलाता है, उसका भाव क्या है? साहित्यिक सिखाता है, पर भाषा-विज्ञान एक पक्ष प्रायेण बढ़कर भाव के साधन की मीमांसा करता है।'













करता है। भाषा के जीवित तथा प्रयुजित रूप में भाषा-विज्ञान का धन्यत्व सम्बन्ध है। अतः भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक और उदार है। विकसित या अविकसित, प्राचीन या अर्वाचीन भाषा का प्रत्येक शब्द अन्तः समान महत्व रखता है। भाषा-विज्ञान का कार्य सामान्य रूप से भाषाओं के दिग्दर्शन तथा विवेचन करना है। 'प्रत्येक भाषा विकसित होती है' इस सिद्धांत पर भाषा-विज्ञान विश्वास करता है। इसके ठीक विपरीत व्याकरण पुरातनवादी पद्धति को प्रपनता है। विद्वान् मईय व्याकरण के प्राचीन सिद्ध रूपों को ही साधु और सिष्ट मानते हैं, नव-निर्मित शब्द उन्हें खटखटे हैं और वे इन 'अपभ्रंश' उपाधि से विभूषित करते हैं। संस्कृतेतर नव-विकसित भाषा जिस में अधिकतर संस्कृत के तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया था पुरातनवाद वैयकरणों ने ऐसी भाषा को प्राकृत भाषा अर्थात् जन-साधारण की भाषा का नाम दिया। क्योंकि उसमें 'धर्म' का 'धम्म' और 'कर्म' का 'कम्म' नवीन शब्द रूपों का प्रयोग होने लगा था। प्राये चलकर प्राकृत के साहित्य-युग पर आसीन हो जाने पर एक नव विकसित भाषा अस्तित्व में आई। उसे भी इन प्राचीनवादी वैयकरणों ने अपभ्रंश भाषा अर्थात् बिगड़ी हुई भाषा नाम दिया। प्राये प्राकृत और अपभ्रंश के रूपों को भी साधु मानना पड़ा। आज भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत, ध्वनि-विचार में हिन्दी के अधिकतर अक्षरात् शब्द व्यञ्जनात् माने जाने लगे हैं, क्योंकि आजकल हिन्दी-भाषा-भाषियों का उच्चारण 'राम' न होकर 'राम्' है। यदि यह परिवर्तन भाषा में कर दिया जाय तो वैयकरण कोषित हो उठेंगे और सम्भवतः इसका तिरस्कार भी हो। चाहे अन्त में यह तथ्य उन्हें स्वीकार करना पड़े।

(३) व्याकरण भाषा-विज्ञान के पद-चिह्नो का अनुगमन करता है। भाषा के नये विकसित रूपों का ज्ञान भाषा-विज्ञान कराता है और कालान्तर में व्याकरण उसको सिद्ध करता है। व्याकरण भाषा की शुद्धि-अशुद्धि पर विचार करता है और भाषा-विज्ञान सामान्य रूप से उसका तर्क-सम्मत अध्ययन कर सिद्धांत निरूपण करता है। 'भाषा का वर्तमान रूप क्या है? यह वैयकरण बतलाता है, उसका भाव क्या है? यह सिखाता है, पर भाषा-वैज्ञानिक एक पग आगे बढ़कर भाव के सा करता है।'



करता है। भाषा के जीवित तथा प्रचलित रूप से भाषा-विज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक और उदार है। विकसित या अविकसित, प्राचीन या अर्वाचीन भाषा का प्रत्येक शब्द अपने समान महत्व रखता है। भाषा-विज्ञान का कार्य सामान्य रूप से भाषाओं का दिग्दर्शन तथा विवेचन करना है। 'प्रत्येक भाषा विकसित होती है' इस सिद्धांत पर भाषा-विज्ञान विश्वास करता है। इसके ठीक विपरीत व्याकरण पुरातनवादी पद्धति को अपनाता है। विद्वान् सर्वत्र व्याकरण के प्राचीन सिद्ध रूपों को ही साधु और शिष्ट मानते हैं, नव-निमित्त शब्द उन्हें खटको हैं और वे इन्हें 'अपभ्रष्ट' उपाधि से विभूषित करते हैं। सस्मृतोत्तर नव-विकसित भाषा जिस में अधिकतर संस्कृत के तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया था पुरातनवादी वैयाकरणों ने ऐसी भाषा को प्राकृत भाषा अर्थात् जन-साधारण की भाषा का नाम दिया। क्योंकि उसमें 'धर्म' का 'धम्म' और 'कर्म' का 'कम्म' नवीन शब्द रूपों का प्रयोग होने लगा था। आगे चलकर प्राकृत के साहित्य-रस पर घासीन हो जाने पर एक नव विकसित भाषा अस्तित्व में आई। उसे भी इन प्राचीनवादी वैयाकरणों ने अपभ्रंश भाषा अर्थात् बिगड़ी हुई भाषा नाम दिया। आगे प्राकृत और अपभ्रंश के रूपों को भी साधु मानना पड़ा। आज भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत, ध्वनि-विचार में हिन्दी के अधिकतर अकारात् शब्द व्यञ्जनात् माने जाने लगे हैं, क्योंकि आजकल हिन्दी-भाषा-भाषियों का उच्चारण 'राम' न होकर 'राम्' है। यदि यह परिवर्तन भाषा में कर दिया जाय तो वैयाकरण क्रोधित हो उठेंगे और संभवतः इसका तिरस्कार भी हो। चाहे अन्त में यह तथ्य उन्हें स्वीकार करना पड़े।

(३) व्याकरण भाषा-विज्ञान के पद-चिह्नों का अनुगमन करता है। भाषा के नये विकसित रूपों का ज्ञान भाषा-विज्ञान कराता है और कालान्तर में व्याकरण उसको सिद्ध करता है। व्याकरण भाषा की शुद्धि-अशुद्धि पर विचार करता है और भाषा-विज्ञान सामान्य रूप से उसका तर्क-सम्मत अध्ययन कर सिद्धांत निरूपण करता है। 'भाषा का वर्तमान रूप क्या है? यह वैयाकरण बतलाता है, उसका भाव क्या है? साहित्यिक सिद्धांत है, पर भाषा-वैज्ञानिक एक पक्ष आगे बढ़कर भाव के साधन की भीमांश करता है।'



करता है। भाषा के जीवन तथा प्रवर्धन का ये भाषा-विज्ञान का परि-  
गणना है। यह भाषा-विज्ञान का क्षेत्र प्राचिनिक व्याकरण और उच्चारण  
विशेषित या अविशेषित, प्राचीन या अर्वाचीन भाषा का प्रादेशिक दृष्टि से  
समान मूल्य रखता है। भाषा-विज्ञान का कार्य सामान्य रूप से भाषाओं  
विश्लेषण तथा विवेचन करना है। 'प्रादेशिक भाषा विकसित होती है' इस विचार  
पर भाषा-विज्ञान विश्वास करता है। इसके ठीक विरुद्ध व्याकरण पुरातन  
वादी पद्धति को अपनाता है। विज्ञान मूलक व्याकरण के प्राचीन विद्वानों  
ही साधु और सिद्ध मानते हैं, नव-निर्मित और उन्हें गटकते हैं और वे  
'अपभ्रंश' उपाधि से विभूषित करते हैं। सत्यतः नव-विकसित भाषा में  
में अधिकतर ससृज के लक्षण शब्दों का प्रयोग किया गया था पुरातनवादी  
वैयाकरणों ने ऐसी भाषा को प्राकृत भाषा अर्थात् जन-भाषापरण की भाषा  
नाम दिया। क्योंकि उसमें 'धर्म' का 'धम्म' और 'कर्म' का 'कम्म' नवीन शब्द  
रूपों का प्रयोग होने लगा था। प्रायेण पतकर प्राकृत के साहित्य-तट पर प्रसिद्ध  
हो जाने पर एक नव विकसित भाषा अस्तित्व में आई। उसे भी इन प्राचीन  
वादी वैयाकरणों ने अपभ्रंश भाषा अर्थात् गिराई हुई भाषा नाम दिया। प्रा-  
कृत और अपभ्रंश के रूपों को भी साधु मानना पड़ा। आज भाषा-विज्ञान  
के अन्तर्गत, ध्वनि-विचार में हिन्दी के अधिकतर अक्षरात्मक शब्द व्यञ्जनात्मक  
जाने लगे हैं, क्योंकि आजकल हिन्दी-भाषा-भाषियों का उच्चारण 'राम'  
होकर 'राम्' है। यदि यह परिवर्तन भाषा में कर दिया जाय तो वैयाकरण  
प्रोद्धित हो उठेंगे और संभवतः इसका तिरस्कार भी हो। चाहे अन्त में य  
तथ्य उन्हें स्वीकार करना पड़े।

(३) व्याकरण भाषा-विज्ञान के पद-चिह्नो का अनुगमन करता है। भाषा  
के नये विकसित रूपों का ज्ञान भाषा-विज्ञान कराता है और कालान्तर में  
व्याकरण उसको सिद्ध करता है। व्याकरण भाषा की शुद्धि-अशुद्धि पर विचार  
करता है और भाषा-विज्ञान सामान्य रूप से उसका तर्क-सम्मत अध्ययन का  
सिद्धांत निरूपण करता है। 'भाषा का वर्तमान रूप क्या है? यह वैयाकरण  
बतलाता है, उसका भाव क्या है? साहित्यिक सिखाता है, पर भाषा-वैज्ञानिक  
एक पक्ष प्रायेण बढ़कर भाव के साधन की सीमासा करता है।'।



करता है। भाषा के जीवित तथा प्रचलित रूप से भाषा-विज्ञान का पता लगाना सम्बन्ध है। अतः भाषा-विज्ञान का क्षेत्र प्रत्यक्ष व्याकरण और उदात्त विकसित या अविकसित, प्राचीन या अर्वाचीन भाषा का प्रत्येक शब्द समान महत्व रखता है। भाषा-विज्ञान का कार्य सामान्य रूप से भाषामें दिग्दर्शन तथा विवेचन करना है। 'प्रत्येक भाषा विकसित होती है' इस सिद्धांत पर भाषा-विज्ञान विश्वास करता है। इसके ठीक विपरीत व्याकरण पुरातनवादी पद्धति को अपनाता है। विद्वान् सदैव व्याकरण के प्राचीन सिद्ध रूपों ही साधु और सिद्ध मानते हैं, नव-निर्मित शब्द उन्हें खटकते हैं और वे 'अपभ्रष्ट' उपाधि से विभूषित करते हैं। संस्कृतेतर नव-विकसित भाषा में अधिकतर संस्कृत के तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया था पुरातनवैयाकरणों ने ऐसी भाषा को प्राकृत भाषा अर्थात् जन-साधारण की भाषा नाम दिया। क्योंकि उसमें 'धमं' का 'धम्म' और 'कर्म' का 'कम्म' नवीन शब्दों का प्रयोग होने लगा था। प्राये चलकर प्राकृत के साहित्य-वद पर भारी पड़े जाने पर एक नव विकसित भाषा अस्तित्व में आई। उसे भी इन प्राचीनवादी वैयाकरणों ने अपभ्रंश भाषा अर्थात् बिगड़ी हुई भाषा नाम दिया। प्राकृत और अपभ्रंश के रूपों को भी साधु मानना पड़ा। आज भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनि-विचार में हिन्दी के अधिकतर अकारांत शब्द व्यजनांत माने जाने लगे हैं, क्योंकि आजकल हिन्दी-भाषा-भाषियों का उच्चारण 'राम' होकर 'राम्' है। यदि यह परिवर्तन भाषा में कर दिया जाय तो वैयाकरण क्रोधित हो उठेंगे और सभवतः इसका तिरस्कार भी हो। चाहे अन्त में यह तथ्य उन्हें स्वीकार करना पड़े।

(३) व्याकरण भाषा-विज्ञान के पद-चिन्हों का अनुगमन करता है। भाषा के नये विकसित रूपों का ज्ञान भाषा-विज्ञान कराता है और कालान्तर में व्याकरण उसको सिद्ध करता है। व्याकरण भाषा की शुद्धि-अशुद्धि पर विचार करता है और भाषा-विज्ञान सामान्य रूप से उसका सर्व-सम्मत अध्ययन कर सिद्धांत निरूपण करता है। 'भाषा का वर्तमान रूप क्या है? यह वैयाकरण बतलाता है, उसका भाव क्या है? साहित्यिक सिखाता है, पर भाषा-वैज्ञानिक एक पग आगे बढ़कर भाव के साधन की मीमांसा करता है।'





मिलती है। दोनों का अनिष्ट सम्बन्ध है। जीवित भाषाओं के छोड़कर भाषा का अध्ययन करने के लिए भाषा-विज्ञान साधक होता है। वह साहित्य का चिर-श्रेणी है। प्राचीन रूपों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए समस्त सामग्री साहित्य से उपाय तद्विषयक नियमों और सिद्धान्तों की रचना करता है। साहित्य के विविध तथा विकसित रूप रक्षित रहने हैं। साहित्य के विषयक खोज प्रायः असम्भव नहीं तो दुरुह अवश्य है। क्योंकि के विविध रूपों का अक्षय भण्डार है।

भाषा-विज्ञान हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास और मूल जानने के लिए अग्रभ्रम, प्राकृत, संस्कृत तथा वैदिक साहित्य की ओर है। यदि हमारे पास भाषा का क्रम-बद्ध साहित्य उपलब्ध न रहे विज्ञान का कोई कार्य निष्पन्न न हो। यदि आज संस्कृत, अवेस्ता साहित्य का अस्तित्व न होता तो भाषा-विज्ञान इन भाषात्रय के पा तथा पारिवारिक सम्बन्ध न जान पाता। साहित्य में प्रयुक्त भाषा के हूँ विभिन्न शब्दों और रूपों के परिवर्तन का ज्ञान होता है। इसी और विस्तृत साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप भाषा-विज्ञान का कार्य समृद्ध और सम्पन्न हो चुका है।

साहित्य और भाषा-विज्ञान का घटूट सम्बन्ध है। साहित्य के अ में भाषा-विज्ञान का महत्वपूर्ण योग है। भाषा-विज्ञान साहित्य के अर्थों एवं विचित्र प्रयोगों को स्पष्ट कर देता है। उच्चारण-सम्बन्धी समस्याओं पर तथा ध्वनियों पर भाषा-विज्ञान ने अग्रव प्रकाश डाला शब्दार्थ-परिवर्तन आदि के कारणों की खोज इसी वाङ्मय के आधार पर हो रही है। इसी प्रकार दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। भाषा-विज्ञान तुलनात्मक प्रणाली ने व्युत्पत्ति-शास्त्र को अनुपम देन दी है जिसने साहित्य मुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति संभव हो सकी है।

प्रश्न ३—भाषा-विज्ञान के प्रमुख अर्थों का परिचय दीजिए तथा उसकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए। (वि० वि० १९५८, भा० वि० १९६२)

भाषा-विज्ञान में भाषा से सम्बद्ध सभी विषयों तथा समस्याओं पर विचार



मिलती है। दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जीवित भाषाओं के जीवित रूपों छोड़कर भाषा का अध्ययन करने के लिए भाषा-विज्ञान साहित्य की सहायता लेता है। वह साहित्य का चिर-श्रेणी है। प्राचीन रूपों के ऐतिहासिक तुलनात्मक अध्ययन के लिए समस्त सामग्री साहित्य से उधार लेता है। तद्विषयक नियमों और सिद्धान्तों की रचना करता है। साहित्य में ही भाषा विविध तथा विकसित रूप रक्षित रहने हैं। साहित्य के अभाव में भाषा विषयक खोज प्रायः असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। क्योंकि साहित्य भाषा के विविध रूपों का अक्षय भण्डार है।

भाषा-विज्ञान हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास और मूल प्रकृति को जानने के लिए अश्रमश, प्राकृत, संस्कृत तथा वैदिक साहित्य की ओर निहारता है। यदि हमारे पास भाषा का क्रम-बद्ध साहित्य उपलब्ध न रहे तो भाषा-विज्ञान का कोई कार्य निष्पन्न न हो। यदि मात्र संस्कृत, अवेस्ता तथा ग्रीक साहित्य का अस्तित्व न होता तो भाषा-विज्ञान इन भाषाओं के पारस्परिक तथा पारिवारिक सम्बन्ध न जान पाता। साहित्य में प्रयुक्त भाषा के द्वारा हमें विभिन्न शब्दों और रूपों के परिवर्तन का ज्ञान होता है। इसी समुन्त और विशाल साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप भाषा-विज्ञान का कार्य अत्यन्त समृद्ध और सम्पन्न हो चुका है।

साहित्य और भाषा-विज्ञान का घट्टा सम्बन्ध है। साहित्य के अध्ययन में भाषा-विज्ञान का महत्वपूर्ण योग है। भाषा-विज्ञान साहित्य के क्लिष्ट अर्थों एवं विविध प्रयोगों को स्पष्ट कर देता है। उच्चारण-सम्बन्धी अनेक समस्याओं पर तथा ध्वनियों पर भाषा-विज्ञान ने अतृप्त प्रकाश डाला है। शब्दार्थ-परिवर्तन आदि के कारणों की खोज इसी वाडमय के आधार पर ही हो रही है। इसी प्रकार दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। भाषा-विज्ञान की तुलनात्मक प्रणाली ने व्युत्पत्ति-शास्त्र को अनुपम देन दी है जिसने साहित्य में प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति मभव हो सकी है।

प्रश्न ३—भाषा-विज्ञान के प्रमुख प्रश्नों का परिचय दीजिए तथा उसकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए। (वि० वि० १९५८, आ० वि० १९६२)

भाषा-विज्ञान में भाषा से सम्बद्ध सभी विषयों तथा समस्याओं पर विचार



विज्ञान है। दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। वैदिक भाषाओं के वैदिक काल से  
 पाँचवाँ शताब्दी तक के हिन्दू भाषा-विज्ञान साहित्य की परम्परा  
 गयी है। यह साहित्य का विकास है। अर्थात् काल के ऐतिहासिक वक्तव्य  
 के अनुसार हिन्दू भाषा-विज्ञान के हिन्दू भाषा-विज्ञानों का विकास है तथा  
 यह कि हिन्दू भाषा-विज्ञानों को रचना का है। साहित्य में ही भाषा के  
 विकास का विकास का गति रखा है। साहित्य के प्रभाव में भाषा-  
 विज्ञान का विकास का गति रखा है। हिन्दू भाषा-विज्ञानों को रचना का है।  
 काल के विकास का गति रखा है।

भाषा-विज्ञान हिन्दू भाषा के ऐतिहासिक विकास और नूतन प्रवृत्ति को  
 जानने के लिए आवश्यक, महत्त्व, महत्त्व तथा वैदिक साहित्य की ओर निहारता  
 है। यदि हमारे पास भाषा का उन्मुख साहित्य उत्पन्न न रहे तो भाषा-  
 विज्ञान का कोई कार्य विज्ञान न हो। यदि भाषा-विज्ञान, प्रवेष्टा तथा प्रीति  
 साहित्य का प्रवृत्ति न होता तो भाषा-विज्ञान इन भाषा-विज्ञान के परस्परिक  
 तथा साहित्यिक सम्बन्ध न जान पाता। साहित्य में प्रवृत्ति भाषा के द्वारा ही  
 होने विभिन्न भाषाओं और कालों के परिवर्तन का ज्ञान होता है। इन सम्बन्ध  
 और विज्ञान साहित्य के सम्बन्ध के फलस्वरूप भाषा-विज्ञान का कार्य प्रत्यक्ष  
 समूह और सम्बन्ध ही प्राप्त है।

साहित्य और भाषा-विज्ञान का घट्ट सम्बन्ध है। साहित्य के सम्बन्ध  
 में भाषा-विज्ञान का महत्त्वपूर्ण योग है। भाषा-विज्ञान साहित्य के विस्तृत  
 प्रयोग विभिन्न प्रयोगों को स्पष्ट कर देता है। उच्चारण-सम्बन्धी प्रत्येक  
 सम्बन्धों पर तथा प्रवृत्ति पर भाषा-विज्ञान ने प्रवृत्ति प्रकाश डाला है।  
 सम्बन्ध-परिवर्तन आदि के कारणों की रोज इसी वाक्य के आधार पर ही  
 हो रही है। इसी प्रकार दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। भाषा-विज्ञान की  
 गुणवत्ता प्रणाली ने व्युत्पत्ति-शास्त्र की अनुपम देन दी है जिसने साहित्य ने  
 प्रवृत्ति सम्बन्धों की व्युत्पत्ति सम्भव हो सकी है।

प्रश्न ३—भाषा-विज्ञान के प्रमुख प्रयोगों का परिचय बोजिर् तथा उसकी  
 उपयोगिता का विवेचन कीजिए। (वि० वि० १९५८, प्र० वि० १९६२)

भाषा-विज्ञान में भाषा से सम्बन्ध सभी विषयों तथा समस्याओं पर विचार









मिलती है। दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जीवित भाषाओं के जीवित रूप छोड़कर भाषा का अध्ययन करने के लिए भाषा-विज्ञान साहित्य की सहायता लेता है। वह साहित्य का चिर-श्रेणी है। प्राचीन रूपों के ऐतिहासिक तुलनात्मक अध्ययन के लिए समस्त सामग्री साहित्य में उपलब्ध है। तद्विषयक नियमों और सिद्धान्तों की रचना करता है। साहित्य में ही भाषा विविध तम। विकसित रूप रक्षित रहते हैं। साहित्य के प्रभाव में न विषमक खोज प्रायः असम्भव नहीं तो दुरूह अवश्य है। क्योंकि साहित्य के विविध रूपों का प्रसार भण्डार है।

भाषा-विज्ञान हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास और मूल प्रकृति जानने के लिए अग्रभूत, प्राकृत, मसकृत तथा वैदिक साहित्य की ओर निहता है। यदि हमारे पास भाषा का क्रम-बद्ध साहित्य उपलब्ध न रहे तो भाषा-विज्ञान का कोई कार्य निष्पन्न न हो। यदि धातु सस्कृत, अवस्था तथा साहित्य का अस्तित्व न होता तो भाषा-विज्ञान इन भाषात्रय के पारस्परिक तथा पारिवारिक सम्बन्ध न जान पाता। साहित्य में प्रयुक्त भाषा के द्वारा हमें विभिन्न शब्दों और रूपों के परिवर्तन का ज्ञान होता है। इसी सम्प्रदाय और विशाल साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप भाषा-विज्ञान का कार्य भद्र समृद्ध और सम्पन्न हो चुका है।

साहित्य और भाषा-विज्ञान का घट्ट सन्बन्ध है। साहित्य के अध्ययन में भाषा-विज्ञान का महत्वपूर्ण योग है। भाषा-विज्ञान साहित्य के कि-स-सर्वों एवं विविध प्रयोगों को स्पष्ट कर देता है। उच्चारण-सम्बन्धी समस्याओं पर तथा ध्वनियों पर भाषा-विज्ञान ने भूपूर्व प्रकाश डाला। शब्दार्थ-परिवर्तन आदि के कारणों की खोज इसी पाठमय के आधार पर ही रही है। इसी प्रकार दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। भाषा-विज्ञान तुलनात्मक प्रणाली ने व्युत्पत्ति-शास्त्र को अनुपम देन दी है जिसने साहित्य प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति संभव हो सकी है।

प्रश्न ३—भाषा-विज्ञान के प्रमुख धर्मों का परिचय दीजिए तथा उस उपयोगिता का विवेचन कीजिए। (वि० वि० १९५८,  
भाषा-विज्ञान में भाषा से सम्बद्ध सभी विषय)



उत्तरा मनुचित परिपक्व प्राप्त किया जा सकता है। प्राचीन भाषा का विस्लेषण तथा अनुशीलन करते समय तत्सुगीन सम्बन्ध के महत्त्वपूर्ण उन्नेत प्राप्त हो जाते हैं। यह धर्मी एक नवजात शिशु के रूप में है, परन्तु इसके शारीरिक कार्यों का निरीक्षण कर हम भविष्य में इससे इन क्षेत्र में समूल्य खोज के लिए अनेक आशाएं कर सकते हैं।

(५) लिपि (Script)—लिपि एक प्रकार से भाषा का परिधान है। मनुष्य-मात्र की विचाराभिव्यक्ति तथा भाव-संज्ञना को साधार करने में इसका बड़ा हाथ है। अतः इसका सम्बन्ध भाषा के लिखित रूप से है। भाषा-विज्ञान लिपि का वैज्ञानिक अध्ययन करता है और इसके उद्भव और विकास की समीक्षा भी करता है। भाषा-विज्ञान ध्वनि-विचार की सहायता से लिपि में संशोधन कर इनको अधिक वैज्ञानिक और उपयोगी बनाने के लिए प्रयत्नशील है।

### भाषा-विज्ञान की उपयोगिता

प्रत्येक वस्तु की अपनी उपयोगिता तथा अर्हता होती है। जो वस्तु जितनी ही उपयोगी होगी उससे मानव तथा समाज का उत्तना ही कल्याण होगा। मानव-जाति तथा संस्कृति की समृद्धि तथा कल्याण करना विज्ञान मात्र का उद्देश्य है। भाषा-विज्ञान का योग भी इस सम्बन्ध में उपेक्षणीय नहीं है। भाषा-विज्ञान के अध्ययन से हमें निम्नोक्त लाभ हैं—

(१) मानव विवेक प्रधान प्राणी है। भाषा तथा शब्द विषयक अनेक प्रश्न उसके मस्तिष्क में घूमते रहते हैं। उसका इस प्रकार का कौतूहल साहित्य तथा व्याकरण का अध्ययन करते समय अधिक बढ़ जाता है। भाषा-विज्ञान इन कौतूहल तथा जिज्ञासा को तृप्त करने की चेष्टा करता है और साथ ही भाषा-सम्बन्धी अनेक समस्याओं का समाधान उपस्थित करता है।

(२) भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत और विस्तृत है। वह किसी भाषा के बन्धन को स्वीकार नहीं करता। वरन् यह विश्व के किसी कोने की भाषा को अपने विराट् रूप में आत्मसात् कर लेता है। साथ ही इसका सम्बन्ध अनेक शास्त्रों तथा विज्ञानों से है। इतिहास, मनोविज्ञान, पुरुषत्व,





## ब्राह्मण-ग्रन्थ तथा प्रातिशाख्य

संहिताओं के पश्चात् ब्राह्मण-ग्रन्थों का काल माना जाता है। इन ग्रन्थों में यश-कदा ध्वनि और अर्थ का उल्लेख किया गया है। पातुओं के अर्थ को समझने का यह प्रथम प्रयास है। वैदिक संहिताओं का पद-पाठ भाषा-विज्ञान के विकास में एक नवीन अध्याय जोड़ देता है। इसमें सन्धि, समास और स्वरावात के आधार पर संहिताओं को पद रूप में किया गया है। प्रत्येक संहिता का पद-पाठ पृथक् पृथक् ऋषि ने किया। शाकल्य ऋषि ऋग्वेदीय पद-पाठ के, शागुं सामवेदीय के तथा माध्विन्द्व यजुर्वेदीय के पद-पाठकार थे। वेदों की ध्वनि तथा उच्चारण की दृष्टि से परम्परागत परिपाटी को अक्षुण्ण बनाने के लिए वेदों की प्रतिशाखा का अध्ययन होने लगा। वेदों के शुद्ध उच्चारण और निपात ध्वनि की रक्षा के लिए विद्वानों ने प्रतिशाखानुसार जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये उन्हें प्रातिशाख्य कहते हैं। यह उपलब्ध प्रातिशाख्य पाणिनी उत्तर काल की रचनाएँ हैं और प्राचीन प्रातिशाख्य पर आधारित हैं के नाम, भास्वात, उपसर्ग और निपात भेद, ध्वनियों का प्रोट वर्ग, स्वराघात, मात्रा-काल और उच्चारण विषयक नियमों का अध्ययन निघण्टु और यास्क (८०० ई० पू०)

प्रातिशाख्यों के बाद निघण्टु की रचना हुई। यास्क ने निघण्टु की व्याख्या की है। इस समय एक ही निघण्टु प्राप्त है। के शिल्लट शब्दों की सूची मात्र है। यास्क ने उसके प्रत्येक शब्द वेदों में उद्धरण देकर व्युत्पत्ति तथा अर्थ पर विचार किया है के धेनू में यह प्रथम प्रयास है। निरुक्तकार यास्क ने शास्त्राध्ययनेक भाषा-शास्त्रियों का उल्लेख किया है तथा उनके मतों को है। शब्दों की व्याख्या के साथ ही साथ भाषा की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण किया है। इस पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि विराम इस समय तक पर्याप्त हो चुका था।

मुनिप्रय—पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि

पाणिनि के पूर्व वैवाकरणों में आपिसलि, वासिष्ठन और इन्द्र





## टीकाकार

अष्टाध्यायी की टीका वामन तथा जयादित्य (७०० ई०) लेखक-द्वय ने की। उन्हें 'काशिका' के नाम से अभिहित किया गया। जिनेन्द्रबुद्धि ने काशिका की टीका 'कानिना-न्याय' नाम से की। काशिका की टीकाओं में हरिदत्त की 'परमजरी' भी सुन्दर बन पड़ी है। महाभाष्य की टीकाओं में भर्तृहरि की 'वाक्य-पदीय' पुस्तक प्रमुख है जिसमें भाषा के दार्शनिक पक्ष पर विचार किया गया है।

## कौमुदीकार

टीकाकारों के उपरान्त कौमुदीकारों का समय आता है। अष्टाध्यायी को अधिक सुबोध बनाने के लिए टीका के पुरातन निर्माता का त्याग किया गया और नवीन-वदति का उपक्रम किया गया जो कौमुदी के नाम से विख्यात हुआ। इस नूतन शैली का सर्वप्रथम ग्रन्थ विमल सरस्वती की रचना 'रूपमाला' है। प्रत्याहार, सञ्ज्ञा, संधि, कृत, उद्धित और समास के व्यवस्थित क्रम का इस ग्रन्थ में सूत्रपात किया गया है। भट्टोजी दीक्षित कृत 'सिद्धान्त-कौमुदी' भाषा-विज्ञान में संस्कृत भाषा की सर्वाधिक महत्व की रचना है। इसकी लोकप्रियता ने अष्टाध्यायी को भी उपेक्षित बना दिया है। अन्य व्याकरणों में हेमचन्द्र दण्डानुशासन तथा बोपदेव का मुग्धबोध भी उल्लेखनीय हैं।

छन्द की अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना शक्तियों का सांख्यिक और शिष्यक विवेचन ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, रस-महाधर आदि मिलता है।

## प्राकृत भाषाएँ

संस्कृत के पर्याय प्राकृत, पाली तथा मगध भाषाओं को। उनका अध्ययन कर व्याकरणों ने उन्हें भी व्याकरण के अंतर्गत दिया। पाली भाषा में कच्चायन, मोगलान रचित व्याकरण सर्व चिन्हों पर लिखे गये। हेमचन्द्र के 'दण्डानुशासन' के आठवें अध्याय पर विचार किया गया है। बररवि का 'प्राकृत-प्रकाश' प्राकृत भाषा का व्याकरण है। इन भाषा-ग्रन्थों में प्राकृतों के तुलनात्मक अध्ययन को प्रमुख से माना गया है।

## प्राधुनिक युग

नारायण भाषा-विज्ञान का प्राधुनिक रूप में सम्भवतः यूरोप के मध्य-युगीन प्रायः दृष्टा है। योरोपीय विद्वानों ने भारतीय भाषाओं के अध्ययन में विशेष रुचि ली है। १८वीं शताब्दी में इतिहास भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन जान पीय ने 'भारतीय प्राचीन-भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन' तथा १८वीं शताब्दी में 'निर्वाह का तुलनात्मक अध्ययन' की रचना कर उन्होंने भारतीय एक वैज्ञानिक दृष्टि से शा० उर्दू का नैसर्गिक तथा शा० केता हिन्दी भाषा का अध्ययन प्रारम्भ किया है। अन्य प्रान्तीय भाषाओं में शा० हिन्दी भाषा पर विशेषतः ने विद्वानों भाषा पर, यून आदि ने मराठी भाषा पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

वर्तमान युग में भाषा-विज्ञान सम्बन्धी कार्य करने वालों में स्व० र गोपाल भण्डारकर का नाम विरामरणीय है। उन्होंने सस्कृत व्याकरण परम्परा को रखने हुए योरोपीय विद्वानों के सिद्धान्तों का गहन अध्ययन है तथा प्राचीन मध्य तथा प्राधुनिक प्राय-भाषाओं की शोधपूर्ण मी है। डा० मुनीति कुमार चटर्जी तथा प्राय-भाषा का नाम मूल भारतीय के सम्बन्ध में उत्तेजनीय है। चटर्जी का बंगाली भाषा के विकास का अनेक दृष्टियों से भाषा-विज्ञान की सम्पत्ति है। डा० घोरेंद्र चम बाबूराम सक्सेना (प्रबन्धी), मोहम्मद कादरी (हिन्दु-स्तानी ध्वनि), उम्र तिबारी (भोजपुरी), सुभद्र झा (मैथिली), हरदेव (हिन्दी प्राय-विज्ञान) प्रसिद्ध भाषा शास्त्री हैं।

प्रश्न ५—प्राधुनिक भाषा-विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का कराइए।

उन्नीसवीं शताब्दी में भाषा-विज्ञान के प्रारम्भ तथा विकास का जो संक्षिप्त परिचय बीजिए।

यह पुरातन साहित्य के अध्ययन की व्यवस्था का भाषा-विषयक विवेचन इतना पुरातन नहीं जितना

का प्रभाव था। अतः भाषा तत्वों का विश्लेषण एवं वैज्ञानिक अध्ययन योरोप में भारत की अपेक्षा अधिक देर से हुआ। योरोप के भाषा-सम्बन्धी अध्ययन के दो भेद किये जा सकते हैं—प्राचीन और आधुनिक।

### प्राचीन

सर्वप्रथम ग्रीस के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में विश्वास प्रकट किया। प्लेटो ने अपने गुरु सुकरात के भाषा के अक्षर की अधिक पल्लवित किया। ग्रीक ध्वनियों के धोष और अघोष के रूप में वर्गीकरण का यह प्रथम प्रयास था। भाषा विचार के अन्तर का स्पष्टीकरण तथा व्युत्पत्ति का सकेत प्लेटो की कृतियों में मिलता है। नव्वेला अरस्तू ने भी प्लेटो के कार्य को आगे बढ़ाया। अरस्तू ने पदों का विभाजन कर सज्ञा तथा क्रिया के रूपों को अधिक स्पष्ट करने की चेष्टा की है। ये वर्णों को अविभाज्य ध्वनि मानते हैं। अरस्तू द्वारा दी गई स्वरों की परिभाषा (स्वर वह है जिसकी ध्वनि बिना जिह्वा या ओष्ठ के उच्चरित हो) कुछ अंशों में वैज्ञानिक कही जा सकती है।

### ग्रीक

ग्रीक भाषा के सर्वप्रथम वर्णानुक्रम योंन थे। यूरोप में स्वर और व्यंजन की उचित परिभाषा सबसे पहले इन्होंने ही दी है। कर्ता, क्रिया, काल, लिंग, पुरुष और वचन के पारस्परिक सम्बन्ध की स्पष्ट अभिव्यक्ति इनके व्याकरण में प्राप्त होती है। इस कृति की उपादेयता अब भी कम नहीं है।

### लैटिन

ग्रीस और रोम के सम्पर्क के फलस्वरूप दोनों सभ्यताओं का मेल हुआ। ग्रीक पद्धति के आधार पर लैटिन का भी सम्पर्क अध्ययन होने लगा और उस भाषा के व्याकरण लिखने की प्रवृत्ति जागरूक हुई। पन्द्रहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध विद्वान् मारेक्स बाल ने प्रथम आधुनिक लैटिन व्याकरण लिखा। बरो और इतिहास के व्याकरण भी उदासीनता की दृष्टि से उत्तम हैं। ईसाई धर्म के प्रचार के तथा रोम तथा ग्रीस में मोल्ड टेरेटामेण्ट के अध्ययन के कारण ग्रीक, लैटिन और हिब्रू भाषाओं के तुलनात्मक विवेचन का धोरण होने लगा।



व्याकरण की परम्परा की नींव डाली तथा कुछ ध्वनियों के नियम का सूत्रपात भी किया। उनका महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'भारतीय भाषा और ज्ञान' है। उन्होंने भाषाओं के विभाजन का प्रयास सर्वप्रथम किया। उनके बड़े भाई एडोल्फ स्तेगेल ने संस्कृत और समीचीन भाषाओं को सयोगात्मक और वियोगात्मक दो उपवर्गों में बांटा। हम्बोल्ट महोदय ने भाषा के ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टिकोण के ऊपर बल दिया। इस दृष्टिकोण के व्यापकत्व के कारण उनकी तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का पिता कहा गया है। भाषा-विभाजन के समय चीनी भाषा के पारंगत पर विचार प्रकट किया।

इस युग के रैक्स, प्रिम और बॉय भाषा शास्त्रीय प्रमुख हैं। रैक्स ने नामों भाषा की उत्पत्ति तथा जीनरैड की भाषा के विकास पर उपयोगी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इनका मत था कि निम्न सामग्री के अभाव में किसी देश के इतिहास का परिचय भाषा-शास्त्र एवं शब्द-तत्त्व के आधार पर दिया जा सकता है। द्रविड भाषाओं को संस्कृत से निम्न बनताना एन इन्होंने घनेक भाषाओं के व्याकरण की रचना की। १८१६ में कार्लोस प्रिम का देवभाषा व्याकरण जर्मन भाषा के ऊपर उच्च कोटि का घनेक व्याकरण है। इसी में प्रिम नियम का वर्णन है। इसमें ध्वनि नियमों पर एवं लघु दृष्टि का भी है तथा वाक्य पर भी प्रशस्तनीय कार्य किया है। प्रारम्भिक भाषा विज्ञान के प्रधान रचनाओं में से एक है। 'धातु प्रविद्या' नामक इनकी पुस्तक में धीक, नैटिन अक्षरता, अमन तथा संस्कृत के विविध रूपों की तुलनात्मक प्रयोगों की गई है। घनेक भाषाओं में तुलनात्मक व्याकरण की रचना के साथ ही संस्कृत का समीर अक्षरता इन्होंने भाषाओं के मूल को अोजन के लिए किया। बाव न संस्कृत तथा धीक भाषाओं के व्यवसाय पर भी एक वैज्ञानिक अवलोकन किया है। बाव का सबसे बड़ा सिद्धान्त वाक्य यह था कि भाषा-विज्ञान के नियम घनेक एक निश्चित परिधि के भीतर ही रहते हैं।

इस समय तक भाषा विज्ञान का ठोस स्वरूप सामने आने लगा था। भाषा व परोक्ष रूप से परोक्ष सागरी की निम्न विज्ञानों के अध्ययन के अधिक समृद्ध बना दिया था। संस्कृत तथा प्राचीन भाषाओं के अध्ययन के अतिरिक्त भाषाओं के वर्गीकरण के विभिन्न पद्धतियों तथा प्रयोगों की आवश्यकता पर भी





भारत में संस्कृत को देवभाषा तथा वेदों को अपौरुषेय समझा जाता है । इस प्रकार ईसाई प्राचीन विधान (Old Testament) को भाषा को, बौद्ध पाली को ईश्वर की प्रथम भाषा मानते हैं प्राधुनिक भाषाओं का उद्भव इन्हीं से हुआ है ।

खण्डन

(क) ईश्वर की दी हुई एक ही बोली होनी चाहिए थी । ईश्वर-प्रदत्त भाषा प्रारम्भ से विशिष्ट, सम्पन्न, परिमार्जित तथा तर्क-युक्त और शुद्ध होनी चाहिए थी । परन्तु हम देखते हैं कि भाषा का विकास धीरे-धीरे होता है ।

(ख) मिस्र के राजा सेमेटिक्स के परीक्षण से ज्ञात होता है कि एकान्त में रखे गए दो नवजात शिशुओं के मुख से फ्रीजियन शब्द 'वेकोस' निकला जिसका अर्थ है 'रोटी' । यह शब्द रोटी खाने वाले प्रहरी के मुख से अनजान में निकल आया । बादशाह अकबर के इसी प्रकार के प्रयोग से बच्चे गुँगे पाए गये । से यह निष्कर्ष निकला कि कोई भी शिशु भाषा लेकर नहीं आता ।

२. धातु-सिद्धान्त या डिंग-डॉंगवाद (Ding-Dong Theory)—मैक्स-मूलर की यह भाषा-विषयक उद्भावना अपूर्व है । उसका मत था कि प्रत्येक वस्तु का टुकड़ा किसी वस्तु से टकराने पर एक विशेष कम्पनमय ध्वनि करता । वह ध्वनि अन्य ध्वनियों से भिन्न होती है । सृष्टि के प्रारम्भ में इसी तरह की एक विभावना शक्ति मनुष्य में थी । जब वह किसी वस्तु के सम्पर्क में आता उसके मुख से उस वस्तु के लिए एक ध्वनि प्रकट हो जाती थी । यह नैसर्गिक शक्ति थी जो भाषा का विकास होने पर लुप्त हो गई । विभिन्न वस्तुओं के सम्बन्ध में ये ध्वन्यात्मक अभिव्यक्तियाँ 'धातु' थी । प्रारम्भ में ध्वनियों की संख्या बहुत बड़ी थी । धीरे-धीरे ये ध्वनि-रूप लुप्त हो गए, केवल १००-१५० धातु शेष रहे । उन्हीं से भाषा की उत्पत्ति हुई । यह मत ध्वनि और अर्थ में एक रहस्यमय सम्बन्ध मानता था ।

खण्डन

मैक्समूलर की भाषा के उद्भव की यह धारणा किसी ठोस प्रमाण के अभाव में केवल कल्पना पर ही आधारित है । मनुष्य के पदर उद्भाविता शक्ति का कोई आधार नहीं है । नाटोनी उदा सेमेटिक परिवारों में ही धातुओं की स्थिति है, अन्य भाषा-परिवारों में धातुओं की कोई वस्तु नहीं है । भाषा के लिए





## मीमांसा

(१) इन प्रकार के शब्दों का अनुशासन बहुत बड़ा है, मन्त्रोक्तों की मन्त्रोक्तों के बिना ही इनका निरन्तर प्रभाव है।

(१) मनुष्य अपनी धन्यात्मक शक्ति के होने हुए अनुशिक्षकों पर प्रभावित क्यों रहा ?

भाषावैज्ञानिक विद्वान् इस मत की सर्वथा त्याग्य नहीं मानते, क्योंकि भाषा में अनेक शब्द अनुकरण के द्वारा उत्पन्न होते हैं।

५. मनोभावाभिध्वजकतावाद—इसे मनोभावाभिध्वजकतावाद, मन-प्रेरणा-वाद तथा पूह-पूह-वाद (Pool-Pool) आदि समाप्तो से संबोधित किया जाता है। इस मत के अनुसार मानव से अन्य प्राणियों की भाँति भावावेन के अवतर पर सुख, दुःख, आश्चर्य, घृणा आदि की हा, हाय, ओह, पूह, अह, धिक्, धत्, फाई, छि. आदि जैसे शब्द सहज ही निकल जाया करते हैं। ये ध्वनियाँ मनोवेगों को प्रकट करती हैं। धीरे-धीरे इन्हीं शब्दों से भाषा विकसित हुई।

## समीक्षा

ये शब्द न्यून तथा परिमित संख्या में हैं। इन वित्तमयादि-बोधक शब्दों का अस्तित्व वास्तव से पृथक् है तथा सभी भाषाओं में एक समान नहीं है। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार ये भिन्न-भिन्न हैं, जैसे छि-छि. और फाई-फाई। भाषावैज्ञानिक शब्द स्वाभाविक न होकर सांकेतिक हैं।

६. ओ-हे-हो वाद—इसे धम-परिहरण-मूलकतावाद कहते हैं। इसके जन्म-शताब्दी (Noire) का मत था कि शारीरिक धम का कार्य करते समय श्वास-प्रश्वास की तीव्र गति से स्वर-तन्त्रियों में एक प्रकार का कम्पन होने लगता है। उस समय कुछ ध्वनियाँ उच्चरित होकर मानव के धम-परिहार में सहायक होती हैं। प्रायः देखा जाता है कि घोड़ी चलाते हुए 'हिओ' या 'छियो' कहते हैं। मत्लाह पकान के लिए 'ओ हे-हो' कहते हैं। भाषा में इनकी संख्या अत्यल्प है, धर्म की दृष्टि से भी कोई महत्व नहीं है।

७. टा-टा-सिङ्गाङ्ग तथा संगीतवाद (Sing-Song Theory)—टा-टा-पाद के अनुसार मानव काम करते समय मनमाने वाले उच्चारण ध्वनियों से



## मीमांसा

(१) इस प्रकार के शब्दों का अनुसृत गूढ़ षोड़ा है, प्रमोदा की के बिनारे तो इनका निरान्त प्रभाव है।

(१) मनुष्य शरीर ध्वन्यात्मक गति के होते हुए पशु-पक्षियों के समान क्यों रहा ?

प्राधुनिक विद्वान् इस मन को सर्वज्ञ त्याग्य नहीं मानते, क्योंकि अनेक शब्द अनुकरण के द्वारा उत्पन्न होते हैं।

५. मनोभावाभिव्यञ्जकतावाद—इसे मनोभावाभिव्यक्तिवाद, मनवाद तथा पूह-पूह-वाद (Pooh-Pooh) आदि समाप्तो से संबोधित किया है। इस मन के अनुसार मानव से अन्य प्राणियों की भाँति भावावेग के पर गुण, दुःख, आश्चर्य, पृणा आदि को हा, हाय, ओह, पूह, मद्ह, धत्, फाई, छिः आदि जैसे शब्द सहज ही निकल जाया करते हैं। ये मनोवेगों को प्रकट करती हैं। धीरे-धीरे इन्हीं शब्दों से भाषा निर्मा हुई।

## समीक्षा

ये शब्द न्यून तथा परिमित सदृश में हैं। इन विस्मयादि-बोधक शब्दों अस्तित्व वाक्य से पृथक् है तथा सभी भाषाओं में एक समान नहीं है। काल और परिस्थिति के अनुसार ये भिन्न-भिन्न हैं; जैसे छि-छिः ओर फाई। प्राधुनिक शब्द स्वाभाविक न होकर सांकेतिक है।

६. यो-हे-हो वाद—इसे श्रम-परिहरण-मूलकतावाद कहते हैं। इसके दाता न्वाइर (Noire) का मत था कि शारीरिक श्रम का कार्य करते श्वास-प्रश्वास की तीव्र गति से स्वर-तन्त्रियों में एक प्रकार का कम्पन सगता है। उस समय कुछ ध्वनियाँ उच्चरित होकर मानव के श्रम-परिह सहायक होती है। प्रायः देखा जाता है कि धोबी वस्त्र धोते हुए 'हियो' 'छियो' कहते हैं। मल्लाह थकान के लिए 'यो हे-हो' कहते हैं। भाषा में सत्त्वा प्रत्यक्ष है, श्रम की दृष्टि से भी कोई महत्व नहीं है।

७. टा-टा-सिद्धान्त तथा संगीतवाद (Sing-Song Theory)—टा



व्यवहार-ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं। यन्त्र और श्रोता दोनों के विचारों की ध्वनिव्यक्ति का साधन है। दोनों इससे लाभान्वित होते हैं। भाषा समाज-सापेक्ष वस्तु है। समाज में प्रत्येक कार्य-संचालन के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। व्यवहार रूप में भाषा ध्वनि-संकेतों का संचालन है। व्यापक अर्थ में भाव-प्रकाशन के साधन भाषाओं—इंगित या संकेत, स्वर-विकार, भाव-भंगिमा, चल और प्रभाव भाषा ही कहा जायेगा परन्तु अधिकांश रूप में समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार ध्वनियों के लिए ही भाषा का प्रयोग किया जाता है। पशु-पक्षी भाषा की भाषाविशेषता इसका विषय है।

भाषा अनेक अर्थों में व्यवहृत होती है। सामान्य बोली को भी भाषा कहते हैं, जैसे गूरे के पास भाषा नहीं है। इसका प्रयोग सामान्य भाषा के लिए भी होता है। संसार की अनेक भाषाओं का वर्गीकरण किया गया है। बोली के अर्थ में भी भाषा प्रयुक्त होती है; जैसे उसकी भाषा बुन्देली है। भाषा विज्ञान के पाठकों के लिए भाषा का महत्त्व कम नहीं है। संसार की समस्त भाषाओं को कुछ परिवारों में विभाजित कर दिया गया है। प्रत्येक परिवार में भाषा-वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में कुछ सजातीय भाषाएँ हैं। प्रत्येक भाषा में अन्तर्गत अनेक विभाषाएँ हैं और तदनन्तर बोलियाँ। अतः भाषा, विभाषा और बोलियाँ ही भाषा-विज्ञान के अध्ययन का प्रमुख विषय हैं।

### बोली

सबसे प्रथम हम बोली को लेते हैं। बोलियों के एक प्रकार से समुचित विकास का नाम ही विभाषा तथा भाषा है। बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले भाषा के स्थानीय रूप को बोली कहते हैं। दूसरे रूप में इसे परबोली भी कहते हैं क्योंकि यह घर या समाज में भावों के सादान-प्रदान के काम आती है। कुछ भी अर्थों में यह साहित्यिक नहीं कही जा सकती। इसका क्षेत्र छोटा होता है। डा० भोलानाथ तिवारी ने बोली की परिभाषा इस प्रकार दी है—“बोली किसी भाषा के एक ऐसे सीमित क्षेत्रीय रूप को कहते हैं, जो ध्वनि, रूप, वाक्य-गठन, अर्थ, शब्द-समूह तथा मुहावरे आदि की दृष्टि से उस भाषा के परिनिष्ठित तथा अन्य क्षेत्रीय रूपों से भिन्न होती है, किन्तु



लुप्त हो जाने के कारण महत्वपूर्ण समझी जाती हैं तो 'भाषा' कहलाती हैं, यथा 'ब्राह्म' तथा 'मुण्डा' भाषा ।

२. साहित्य की श्रेष्ठता के कारण बोलियाँ महत्वपूर्ण हो जाती हैं । यथा बंगला ।

३. धार्मिक श्रेष्ठता से भी बोली का महत्व बढ़ जाता है । 'राम' और 'कृष्ण' की भक्ति के प्रभाव से अवधी और वज्ज को अधिक महत्व मिला तथा वे सदियों तक साहित्यिक भाषाएँ रही ।

४. विकसित समाज तथा बोलने वालों के कारण बोली महत्वपूर्ण बन जाती है । यथा अंग्रेजी आज एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है ।

५. राजनीति बोली के प्रमुख एवं महत्वपूर्ण होने का विशेष कारण है । राजनीति के केन्द्र की बोली विकसित तथा समृद्ध होकर भाषा का रूप ग्रहण कर लेती है । दिल्ली-भरत के समीप की खड़ी बोली ने अवधी, वज्ज जैसी विकसित भाषाओं को दबाकर राष्ट्र-भाषा का पद प्राप्त किया है । अन्य उदाहरण वेरिन की फ्रांसीसी तथा लन्दन की अंग्रेजी बोलियाँ हैं ।

भाषा-शास्त्री के लिए बोली का अत्यधिक महत्व है । साहित्यिक भाषा से भाषावेत्ता के लिए बोली का अधिक महत्व है । इसका स्पष्ट कारण यह है कि बोली की स्थिति स्वाभाविक तथा प्राकृतिक होती है और उगड़ा विज्ञान भी स्वाभाविक होता है । साहित्यिक भाषा मंदिर व्याकरण के नियम तथा उपनियमों में बंध जाती है और उगकी नैसर्गिक गति और स्वाभाविक विकास रुक जाता है । साहित्यिक भाषा कथन में बंध कर घानी गति पद कर देती है । व्याकरण के दृढ़ बंधन के कारण भाषा का प्रसरण रुक जाता है और इस प्रकार से भाषा की प्रगति रुक जाती है । परिचय प्रगति का नियम है । पूरी परिचय रुका भाषा का बड़ी घात होता है । मन्दा परिचय नीति है अतः एक बाल-विद्वत् को परिचयपूर्ण मन्दा की स्वाभाविक भाषा का अध्ययन करना चाहिए । बिना यह भाषा के वैज्ञानिक का अध्ययन कर भाषा की प्रगति रुकती है । उनका विज्ञान के महत्त्व का परिचय है । अतः भाषा



प्रश्न ८—भाषा परिवर्तनशील क्यों कही जाती है परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

अथवा

भाषा के बाह्य तथा आन्तरिक रूपों में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

संसार के कण-कण में प्रतिफल परिवर्तन हो रहा है । प्रत्येक वस्तु ही क्या मानव सस्कृति, सभ्यता तथा दर्शन में भी शनै-शनै परिवर्तन दृष्टिगत होता है । किसी वस्तु के परिवर्तन का हमें आभास मिल जाता है क्योंकि वह परिवर्तन अति दीर्घ होता है परन्तु कभी-कभी इसका परिवर्तन कालान्तर में दृष्टिगत होता है । किसी अवस्था पर हम उसके आभास का दर्शन कर पाते हैं । परिवर्तन के इस सादृश्य चक्र में भाषा भी अन्तर्हित है । अतएव भाषा में परिवर्तन ही उसका विकास है । परिवर्तनशीलता की प्रभविष्णुता अचूक और अमोघ है । यह विकास भाषा के समस्त रूपों में होता है । ध्वनि, पद, रूप, अर्थ और वाक्य भी भाषा के परिवर्तन-चक्र के अंग (Spokes) हैं । इनमें भी चक्र की गति के साथ परिवर्तन होता रहता है । भाषा परम्परागत वस्तु है । उसकी धारा प्रवाहिन तथा परिवर्तनशील होने पर भी स्थायी और नित्य है । वह अपने एक उद्गम स्थान से मृष्टि के आदिकाल से लेकर अब तक एकता के आधार पर अविच्छिन्न रूप से बह रही है । कालान्तर में यह भाषा अपने आदि स्वरूप से इतनी परिवर्तित हो गई है कि उसके प्राचीन और अर्वाचीन रूप में जनीन-आसमान का अन्तर दिखाई देता है ।, कहीं वैदिक संस्कृत और कहीं आज की हिन्दी ।

भाषा के इस परिवर्तन की ही विकास कहते हैं । व्याकरण इसे हास, ध्वनि तथा अक्षर-पिसे हुए रूप के नाम से पुकारते हैं । परन्तु भाषा-विज्ञानवत्ता अपनी उदार दृष्टि के कारण विकास की सजा में विभूति देते हैं । विराट् या अर्थ भाषा की उन्नत या परिभाषित अवस्था नहीं है, परन्तु नवीनता का परिणाम मात्र है । जिस प्रकार मानव की अवस्थाओं की परिवर्तना का निरान होता है उसी प्रकार भाषा की दशाओं का विवाध होता है ।

उदाहरणार्थ उदात्ताय का 'भा' रह जाता यमजि न होकर भाषा-शास्त्र के दृष्टि से निराम मान ली है।

भाषा में परिवर्तन अधिस्तन परम्परा तथा जन-मनन की विभिन्नता के कारण होता है। भाषा की निष्ठा मानव तथा समाज के मन्त्र से निवर्त है। समय-गण से यह परिवर्तन धीरे-धीरे होता है। एक भारतीय सिन्धु प्रबर्ज महिला के मन्त्रों के कारण अर्धे ही बोलता। समय तथा सम्पर्क की यह भाषा साहित्यिक न होकर सर्व-साधारण की भाषा होती है जिसे 'बोलों' की संज्ञा दी जाती है। प्राचीन गंगापारण की भाषा में ही हिन्दी भाषा की उत्पत्ति हुई है। काल-भेद तथा अन्य गच्छितियों के सम्पर्क से उसके मूल रूप में अन्तर अवश्य आ जाता है। यह एक यतमान तथ्य है। भाषा नित्य है तथा निरन्तर परिवर्तित होती रहती है।

**भाषा के विकास या परिवर्तन के कारण**

भाषा-शास्त्रज्ञों ने भाषा-साम्बन्धी इस विकास के कारणों के पोजने का प्रयास किया है। प्रवृत्ति तथा भाषा के आधार पर इन को दो वर्गों में विभक्त किया गया है। एक साम्यन्तर वर्ग तथा दूसरा बाह्य वर्ग।

**(क) साम्यन्तर वर्ग**

साम्यन्तर वर्ग के अन्तर्गत भाषा की स्वाभाविक गति तथा प्रयोक्ता की पारोरिक तथा मानसिक योग्यता से सम्बन्धित कारण आते हैं। वे कारण ये हैं :—

(१) प्रयोग से घिस जाना—अधिक प्रयोग के फलस्वरूप शब्दों में जो परिवर्तन होते हैं उन्हें 'स्वयभू' कहा जाता है। इसमें शब्द स्वयमेव तथा स्वय सञ्चित शक्ति के द्वारा विकसित होकर छोटे तथा सरल होते हैं। यह परिवर्तन स्वाभाविक होता है। यथा—द्वया का तू, क्नी (Know) का 'नो' 'मास्टर साहब' का 'मास्साय' आदि।

(२) बलाघात—जिस ध्वनि या अक्षर पर अधिक बल दिया जाता है वह अन्य ध्वनियों या अक्षरों को या तो निर्बल बना देता है या नष्ट कर देता है। इससे वर्ण सभी लुप्त या शक्तिहीन हो जाता है। इस कारण भी भाषा-विकसित

होती है। जैसे धाम्मांतर में 'अ' पर बल है अतः धारम्भ का 'अ' समाप्त होकर 'भौतर' बन गया। बाजार में बजार तथा उपाध्याय से 'भा' इस प्रकार के रूप है। सस्कृत के भांडार तथा भंडार दो रूप बलापान के ही फलस्वरूप हैं,

(१) प्रयत्न लाघव या मुक्त-मुक्त—यह कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि भाषा में २० प्रतिशत परिवर्तन इसी के आधार पर होते हैं। यह मानव की सहज प्रवृत्ति है कि वह थोड़े में प्रयत्न में अधिक कार्य की निष्ठि करना चाहता है। इसी प्रयत्न लाघव (कम प्रयत्न) के प्रयोग के द्वारा व्यक्ति सरलता के लिए शब्द को लघु या सृज उच्चरित बना डालने है। इस तरह शब्दों का दीर्घाकार रूप सक्षिप्त और सरल रूप में परिवर्तित हो जाता है। उच्चारण की दृष्टि में शब्दों को सहज और मजबूत बना देना ही 'मुख-मुख' है। इस प्रकार प्रायः व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ, सर्वनाम तथा अभिवादन के शब्द रिकुसित होकर लघु रूप धारण कर लेते हैं।

उदाहरणार्थ—धनाब से नाब एतादम ने शारह (शर जोष), स्थान से थान (थज्जन-जोष), स्टाउट से स्फाउट, कृषा से किष्वा (स्वरानम), अस्थि से हड्डी (अब्रनाम), वाराणसी से बनारस (वर्ण-विषय), शकंरा से शक्कर, बलकटर से बलटूर (समीकरण), काक से काग (विषमीकरण), उष्ट्र से ऊँट, स्वास से सौंठ (प्रसारण अनुनासिकता) आदि।

(४) भाषातिरेक—यह भी प्रयत्न लाघव का एक प्रकार में भेद है। भाव के अधिक्व तथा स्नेहानिभूति में ध्वनि का रूप मिट्ट हो जाता है। इसमें प्रतिशय तथा सामान्य प्रेम का अधिक प्रयोग होता है, 'कुल्ल' का 'कन्हैया' या 'कान्हा', 'वाव' का 'पइया', बाँह का 'बहिया' आदि।

(५) मानसिक स्तर—भाषा, प्रयोक्ता के मानसिक स्तर में परिवर्तन होने से विचारों में परिवर्तन हो जाता है। विचारों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है। अतः भाषा में भी परिवर्तन हो जाता है। किसी जाति व्यवसाय देश की मानसिक अवस्था की उच्चता तथा निम्नता की वल्यता से भाषा में अंतर हो जाता है। यथा—जर्मन विद्वान् जर्मनी की घरेलू से अधिक सौटब-सयुक्त तथा यंत्र-शोल मानते हैं। बंगाली भाषा समुक्त ध्वनियों की हीनता के कारण मधुर तथा स्त्रीत्व से सुन्दर है। यह मानसिक अवस्था का

घातक है कि मशायी कठिन-मौ-कठिन अध्यन को भीमता में बदलट बीर जाता है।

(१) अनुकरण की प्रवृत्ति—भाषा एक दम्भरा तथा सीखा सम्पत्ति है। अनुकरण के द्वारा अनुप्य भाषा को सीखा है। मध्यक् तथा गुड अनुकरण की विधि में भाषा में सुनाम परिवर्तन होता है परन्तु अनुकरण की प्रवृत्ति में उच्चारण में घनत्व आ जाता है और जनसंख्या स्थिति में परिवर्तन हो जाता है। यह प्रवृत्ति तथा प्रवृत्ति अनुकरण की प्रवृत्ति का स्पष्ट दर्शन प्राप्त आठ-सग पीढ़ी के घनत्व होता है। इसमें एक भाषा विज्ञान में एक बड़े घन में विकसित या परिवर्तित हो जाता है।

अनुकरण की प्रवृत्ति निम्न कारणों में होती है—

(क) शारीरिक विभिन्नता—उच्चारण घन तथा घात-प्रदानों के समान न होने के कारण से अनुकरण पूर्ण तथा गुड नहीं हो पाता और कुछ काल के घनत्व भाषा में परिवर्तन हो जाता है। एक व्यक्ति का शरीर अन्य व्यक्ति के शरीर से गठन तथा सहायन की दृष्टि से भिन्न होता है। तदनुसार मस्तिष्क के झुकाव तथा उच्चारण घन की भिन्नता से 'घनि-उच्चारण' में भी घनत्व आ जाता है। कुछ विद्वानों ने इसका सदन भी किया और कहा कि भारतीय सन्तान यूरोप में गुड प्रवृत्ति को बोलते हैं। परन्तु भाषा के गठन घाति में कोई भेद नहीं पंदा होता। यह निश्चित है कि पीढ़ी दर पीढ़ी भाषा में भिन्नता प्रवर्धन आ जाती है।

(ख) ध्यान की कमी—यह ध्यान की कमी आत्मिक तथा प्रसादक होती है। उचित ध्यान न देने से उच्चारण के अनुकरण में भिन्नता आ जाती है जो कालान्तर में भाषा-परिवर्तन का कारण बन जाती है।

(ग) शिक्षा तथा सन्तान—इन दोनों के कारण से भी अनुकरण उचित रूप से पूर्ण नहीं हो पाता है। इसके घनत्व देशी-विदेशी दोनों ही शब्द आ जाते हैं। उदाहरणार्थ—देव से देव (स>स), वृष्णा का सिसना (प>स) गुण का गुन, कर्ण का कान (ण>न), शिक्षा का सिखा, शत्रिय का शत्री, (क्ष>छ), श्रुण का रित, श्रुषि का रिसि (श्रु का रि) आदि के साथ ही साथ सन्तान तथा शिक्षा के कारण भी हो जाते हैं।

हरण इजन, रायबरेली (लाइब्रेरी), रपट (रिपोर्ट), (साइंड) साट, टेम (टाइम) सिगल (सिग्नल) आदि हैं।

(ख) बाह्यवर्ग

बाह्य वर्ग में बाहर से भाषा पर प्रभाव डालने वाले तत्व माने हैं।

(७) भौतिक वातावरण—एक परिवार में अनेक भाषाएँ और एक भाषा में अनेक बोलियाँ बनने का प्रभावशील कारण भौतिक तथा प्राकृतिक वातावरण है। शीत तथा उष्णता की स्थिति तथा आधिक्य से जीविका, स्वभाव, रहन-सहन, आचरण आदि पर प्रभाव पड़ता है और भाषा इन सभी वस्तुओं पर आधारित है। मैदान में घ बागमन सरल होने के कारण तथा सम्पर्क के कारण भाषा में एक रूढ़ता रहती है जबकि पहाड़ी भागों में घाबागमन की सुविधा तथा सहज सम्पर्क के अभाव में अनेक भाषा तथा बोलियों का विकास पृथक्-पृथक् रूप से होता है। घन पर्वतीय प्रदेश में थोड़ी दूर पर ही भाषा में अन्तर पड़ जाता है। उदात्त भूमि में वास करने वालों की भाषा अधिक उन्नत तथा समृद्ध होगी और उनमें एक प्रकार की दास्यता, गम्भीरता, तथा व्यवस्था रहेगी, क्योंकि खाल साधनों के आधिक्य से लोगों को उन्नति करने का समय मिलेगा। जैसे भारत और यूनान में भाषा की गूढ़ता का दर्शन होता है। इसके विपरीत पर्वतीय या जंगली लोगों की भाषा में इस प्रकार का विकास नहीं होता। घट भौतिक परिस्थितियाँ भी भाषा के विकास पर प्रभाव डालती हैं।

(८) सांस्कृतिक सम्मिलन तथा प्रभाव—संस्कृति समाज का प्राण है। घट इसके प्रभाव से भी भाषा में परिवर्तन आ जाता है।

(क) किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक समस्याओं से प्राचीन शब्दों का पुनरागमन हो जाता है। घट परिणामतः दिवार तथा अतिव्यक्ति-शैली में परिवर्तन हो जाता है। यह स्पष्ट है कि १६वीं शताब्दी से लेकर आधुनिक काल पर्यन्त हिन्दी भाषा में आर्य-संस्कृति के विकास के कारण अनेक संस्कृत शब्दों ने अपना अमिट स्थान बना लिया है।

(ख) व्यक्तिगत के महान् व्यक्तित्व के प्रभाव से भाषा में परिवर्तन हो जाता है। कवि, लेखक, नेता तथा विद्वान् पुरुषों के द्वारा प्रयुक्त अनेक शब्द

भाषा को ही-थी और वाचन-मंडन पर ध्यान देना चाहते हैं। गोमरावी मुगल शासक के राज्य में उत्तरी भाषा को भाषा, मराठा तथा धर्म पर धर्मिक प्रभाव डाला गया उनही से ही वाचनमंडन धर्मिक पाठ्यपुस्तकों में दिया।

(ग) साहित्यिक सम्मानन—कभी-कभी दो विभिन्न साहित्यिक भाषाओं, धर्मिक, वाचनमंडन, वाचनमंडनिक भाषाओं में ही भाषा है और उनका भाषा उन धर्मों पर प्रभाव डाला है। भारत में ही साहित्यिक, धर्मिक-साहित्यिक, धर्मिक-वाचन, भारतीय-मुगलशासक तथा भारत-मुगल के साहित्यिक सम्मानन के हिन्दी भाषा को परिवर्तित रूप में परिवर्तित कर दिया है। उसका धर्म हिन्दी में गया (साहित्यिक) और (धर्मिक), वाचन (धर्मिक), कभी-कभी वाचन, (धर्मिक) धर्मिक के सार में गये हैं।

(६) सामाजिक व्यवस्था—भाषा को परिवर्तित करने का एक प्रमुख कारण सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तितता भी है। साहित्यिक तथा धर्मिक समय में भाषा में परिवर्तित हो जाता है। सामाजिक धर्मिक वाचन धर्मिक प्रत्येक देशवासी के विचार तथा साहित्यिक में परिवर्तित ला देता है। भाषागत रुझानों जुग होकर कुछ नवीन साहित्यिक भाषा की धर्मिक करता है। समय की न्यूनता हमें भाषा के साहित्यिक रूप की और साहित्यिक करती है धर्मिक, सीटी, तथा धर्मिक इसी प्रकार के रूप हैं। समाज तथा राष्ट्र की धर्मिक के समय भाषा में स्थिरता साहित्यिक तथा एक प्रकार की कठोरता का समावेश रहता है।

(१०) भाषा भाषियों की उन्नति—राष्ट्र या देश के जन-जीवन के उन्नत स्तर के कारण भाषा में विकास हो जाता है। प्राधुनिक युग में वैज्ञानिक तथा भौतिक उन्नति के कारण दो नई उन्नति के अनुरूप नई भाषिक-व्यवस्था प्रणाली का विकास हो जाता है और प्राचीन शब्दों में भी नवीन धर्म का समावेश हो जाता है। दूसरे मशीन, रहन-सहन के साधन तथा अन्य वास्तुओं के निर्माण के कारण नये शब्दों का निर्माण हो जाता है। भारतीय भाषाएँ भी वैज्ञानिक उन्नति के फलस्वरूप अधिक व्यापक और उन्नत हो रही हैं।

(११) साहित्य—साहित्य भाषा के साहित्यिक तथा वाचन दोनों ही कारणों से रखा जा सकता है। भाषा परिवर्तित में साहित्यिक का प्रभाव महत्व है। मानव

स्वभावतः सरलता का प्रेमी होता है। उसका यह स्वभाव भाषा में भी कार्य करता है। यह एक शब्द को किसी अन्य शब्द की मददगार या रूप समानता के अनुसरण द्वारा लेता है और इस प्रकार शब्द के मूल रूप में परिवर्तन हो जाता है। आगे यह परिवर्तित रूप प्रचलित हो जाता है। जैसे संस्कृत में 'दादश' के वचन पर 'एकदश' को 'एकदश' बना लिया है। संतानी और संतानीय की अनुनासिकता पंतीय और पंतानीय के सादृश्य पर ही आधारित है। पादचाय के सादृश्य पर पौर्वाय तथा निगुण के सादृश्य पर सगुण हो गया है। सादृश्य स्मृति के आधार पर अन्य प्रकार से अपना कार्य करता है।

उपर्युक्त दृष्टि-विशुद्धि के आधार पर ही भाषा का विकास होता है। विकास का अर्थ कुछ न होकर परिवर्तन मात्र ही है। भाषा-शास्त्री विकास का अर्थ भाषा की अन्तिम अवस्था अनुसंधान करने है।

प्रश्न ६—दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तत्वों का उल्लेख करते हुए भाषा-विज्ञान की विभिन्न पद्धतियों के गुण-दोषों का विवेचन कीजिये।

यह सवाल अन्वयान्तक भाषा तथा वंशिकता का सवाल है। पानी में ही दूरी पर भाषा में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। कहावत है 'होम पर पानी बढ़ने, छाठ बोम पर बानी'। इस भाषा के अदूर परिणाम का कारण है भाषा-विज्ञान ने समाज में जानी जाने वाली भाषाओं के सम्बन्ध को ही तथा एक भाषाओं की गणना का प्रश्न ही किया जा रहा है।

सवाल में भाषा-विभाजन की अन्तःपद्धतियों की व्याख्या की गई है। प्रत्यक्ष रूप से प्रमुख आधार अर्थ विहित है—

(१) महात्मा के आधार पर भी अनेक विद्वानों ने भाषा-विभाजन का न किया है—वेस एलिफाई भाषाओं का वर्गीकरण भाषा-विज्ञान में किया है।

(२) भाषा-विभाजन की पद्धति पर भी भाषा-विभाजन विद्वानों ने किया है। वेस एलिफाई भाषाओं का वर्गीकरण भाषा-विज्ञान में किया है।

भाषा-विज्ञान का अर्थ है—वेस











तत्त्व का योग रहता है। इसमें शब्दों का सम्बन्ध अस्तित्व नहीं है। वे प्रत्यय, विभक्ति आदि से सगुन होकर मान्य में प्रयुक्त होते हैं। मनार की अधिकार भाषाएँ योगात्मक हैं, योग के प्रकृति के अनुसार इन भाषाओं के तीन विभाग किये जा सकते हैं—प्रक्षिप्त, क्षिप्त और अक्षिप्त।

### (क) प्रक्षिप्त-योगात्मक (Incorporating)

इस विभाग की भाषाओं में सम्बन्ध-तत्त्व तथा अर्थ-तत्त्व को अलग नहीं किया जा सकता। जैसे मस्कून 'शुजु' से 'मार्तब' या 'शिनु' से शंख में अर्थ-तत्त्व तथा सम्बन्ध-तत्त्व का अभेद योग हो गया है। इनको समान-प्रधान भाषाएँ भी कहते हैं क्योंकि इनमें अनेक अर्थ-तत्त्वों का समाज की प्रक्रिया से योग हो सकता है जैसे राज पुत्र गण विद्ययः। इनके भी दो भेद किये गए हैं—पूर्ण प्रक्षिप्त और आंशिक प्रक्षिप्त।

पूर्ण प्रक्षिप्त योगात्मक भाषाओं (Completely Incorporative) में सम्बन्ध-तत्त्व तथा अर्थ-तत्त्व का योग इतना पूर्ण रहता है कि शब्दों के संयोग से बना हुआ एक लम्बा-सा शब्द ही पूरा वाक्य बन जाता है। ग्रीनलैण्ड तथा दक्षिणी अमेरिका की चेरो की भाषा इसी प्रकार की है। चेरो की भाषा में—नातेन=लाओ, अमोसोल=नाव, निन=हम के संयोग से 'नाधोलिनि' शब्द बन गया जिसका अर्थ 'हमारे पास नाव लाओ' है। इस प्रकार ग्रीनलैण्ड की भाषा में 'अउलिसरिषतोरमु अपोर्' (वह मछली मारने के लिए जल्दी जाता है) अउलिसर (मछली मारना), पेग्रतोर (किसी काम में लगना), पिन्नेमुअपोर् (वह शीघ्रता करता है) से मिलकर बना है।

आंशिक प्रक्षिप्त योगात्मक भाषाओं (Partly Incorporative) में सर्वनाम तथा क्रिया के मेल में क्रिया लुप्त होकर सर्वनाम का पूरक बन जाती है।

आंशिक भाषा में—

दकार कि ओत=मैं इसे उनके पास ले जाता हूँ।

नकारमु=तू मुझे ले जाता है।

हकारत=मैं तुझे ले जाता हूँ।

भारतीय भाषाओं में भी उदाहरण दृष्टश्य है—

गुजराती में—‘मे कहा जे’ का ‘मकु जे’ (मिने वह कहा) ।

(ख) श्लिष्ट-योगात्मक (Inflecting)

विभक्ति प्रधान, सम्कार प्रधान, विकर्षि प्रधान (Inflectional) भी इसी के नाम हैं । इन भाषाओं में सम्बन्ध-तन्त्र के योग में अर्थ तन्त्र कुछ विरक्त हो जाता है फिर भी सम्बन्ध-तन्त्र की भक्त अवग ही मालूम पड़ती है । जैसे संस्कृत में वेद, नर्त्तन, इतिहास तथा भूगोल में ‘इत’ अत्राग्न वैदिक, वैदिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक आदि । पद्य के परिणामतः वेद आदि पद में भी विचार आ गया है । इसमें कारक, वचन आदि का सम्बन्ध विभक्ति द्वारा होता है । इस वर्ग की भाषाएँ समग्र में सर्वोन्नत हैं । मासी, हामा और भारोपीय परिवार इसी विभाग में आते हैं ।

श्लिष्ट भाषाओं के भी दो उप-विभाग हैं—(१) अन्तर्मुखी तथा

(२) बाह्यमुखी ।

अन्तर्मुखी श्लिष्ट (Internal Inflectional) भाषाओं में जाड़े हुए भाग अर्थ-तन्त्र के बीच में घुलमिल कर रहते हैं । अरबी भाषा में सम्बन्ध-तन्त्र खर होता है जो व्यञ्जनों के साथ घुलमिल कर रहता है । क्त-ब (निगलना) में अन्तर्मुखी विभक्तियाँ लगाकर (निगल, कानल (निगलना), कु-ब (बहुवचन), कतलब (कलब बनते हैं) । इसी प्रकार कानल (माशिन), कानल (गुन) कानल (माशिन), कानल (माशिन), कानल (माशिन) । यहाँ क्त-ब या क्त-न में विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों में अर्थ पार्क होता गया है ।

आगे इस अन्तर्मुखी के दो भेद हैं

(१) संयोगात्मक (Synthetic) —अरबी आदि सम्पन्न भाषाओं का प्राचीन रूप संयोगात्मक था । इसमें अन्वय तो लक्ष्य पर लक्ष्य के अन्वय की आवश्यकता नहीं ।

(२) विद्यात्मक (Analytic) —अरबी संयोगात्मक भाषाओं के रूप विधायक रूप में होता है । यह अर्थ पार्क की आवश्यकता है । अन्वय का अर्थ पार्क की आवश्यकता है । अन्वय का अर्थ पार्क की आवश्यकता है ।

बाह्यमुखी श्लिष्ट (External Inflectional) —भाषाओं के विभागों में

तत्त्व का योग रहता है। इसमें शब्दों का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वे प्रत्यय, विभक्ति आदि से संयुक्त होकर वाक्य में प्रयुक्त होते हैं। ससार को अधिकांश भाषाएँ योगात्मक हैं, योग के प्रकृति के अनुसार इन भाषाओं के तीन विभाग किये जा सकते हैं—प्रश्लिष्ट, श्लिष्ट और अश्लिष्ट।

### (क) प्रश्लिष्ट-योगात्मक (Incorporating)

इस विभाग की भाषाओं में सम्बन्ध-तत्त्व तथा अर्थ-तत्त्व को अलग नहीं किया जा सकता। जैसे संस्कृत 'शृजु' से 'घातव' या 'शिशु' से शिशव मे अर्थ-तत्त्व तथा सम्बन्ध-तत्त्व का अभेद योग हो गया है। इनको समास-प्रधान भाषाएँ भी कहते हैं क्योंकि इनमें अनेक अर्थ-तत्त्वों का समाज की प्रक्रिया से योग हो सकता है जैसे राज पुत्र गण विजयः। इनके भी दो भेद किये गए हैं—पूर्ण प्रश्लिष्ट और आंशिक प्रश्लिष्ट।

पूर्ण प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं (Completely Incorporative) में सम्बन्ध-तत्त्व तथा अर्थ-तत्त्व का योग इतना पूर्ण रहता है कि शब्दों के संयोग से बना हुआ एक लम्बा-सा शब्द ही पूरा वाक्य बन जाता है। ग्रीनलैण्ड तथा दक्षिणी अमेरिका की चेरो की भाषा इसी प्रकार की है। चेरो की भाषा में—  
नातेन=लामो, अमोखोल=नाव, निन=हम के संयोग से 'नाधोलिनिन' शब्द बन गया जिसका अर्थ 'हमारे पास नाव लामो' है। इस प्रकार ग्रीनलैण्ड की भाषा में 'अउलिसरिअर्तोरसु अर्षोर्क' (वह मछली मारने के लिए जल्दी जाता है) अउलिसर (मछली मारता), पैअर्तोर (किसी काम में लगना), पिन्नेमुअर्षोर्क (वह शीघ्रता करता है) से मिलकर बना है।

आंशिक प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं (Partly Incorporative) में सर्वनाम तथा क्रिया के मेल में क्रिया लुप्त होकर सर्वनाम का पूरक है।

दास्क भाषा में—

दकार कि ओत=मैं इसे उनके पास ले जाता हूँ।

नकारनु=तू मुझे ले जाता है।

हुकारत=मैं तुम्हें ले जाता हूँ।



वर्गीकरण भाषा के विकास-क्रम को समझने में सहायक है। भाषा उसकी गति के बोधार्थ इसका योग महान् है। संयोग से वियोग में योग सम्बन्धी विकास का ज्ञान हम वर्गीकरण से यथेष्ट मिल जाता। प्रयोग समस्योकी योनियों आदिम मानव की भाषा की चेतक हैं।

ध्वन ११—भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों पर किया जाता है? प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

जिस प्रकार प्राकृतिमूलक या रचनत्मक वर्गीकरण में भाषावेत्ता भाषा, रचना और रचना पर ही भरना ध्यान केन्द्रित करता है तथा सामान्यता की विविधता तथा उनके प्रयोग की विवेचना कर वर्गीकरण के सिद्धांत का निर्धारण करता है, उसी प्रकार पारिवारिक वर्गीकरण में वह उसी तत्वों के प्रतिरिक्त अर्थ-तत्व का विवेचन कर शब्द तथा भाषा के इतिहास उद्भव और विकास का निरीक्षण कर उनके साम्य की भावना से सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। अतः पारिवारिक विभाजन को ऐतिहासिक, उत्पत्तिमूलक तथा वसानुक्रमिक नाम से भी पुकारा जाता है। मानव वंश-परम्परा में पीढ़ी-दर-पीढ़ी व्यक्ति का अकण होता है और तदनुसार परिवार की स्थापना की जाती है। इसी तरह एक वंश या परिवार में केवल वे भाषाएँ स्थान पाती हैं जिनमें रूप-रचना के प्रतिरिक्त शब्दार्थ और ध्वनि की दृष्टि से भी साम्य होता है।

प्रायः एक ही प्रकार की भाषा में (१) शब्द-समूह (शब्द और अर्थ) (२) व्याकरण या रचना (सम्बन्ध-तत्व) और (३) ध्वनि की समानता हो सकती है। शब्द-समूह और ध्वनि की दृष्टि से व्याकरण की अपेक्षा अधिक दृढ़गति से परिवर्तन होता है। व्याकरण की दृष्टि से समता रखने वाले शब्द क्रिया और वचनाम है, क्योंकि अन्य भाषा में सज्ञा या विशेषण की अपेक्षा इनको कम ही प्रयोग किया जाता है। शब्द-साम्य में शब्दों के तद्भव रूप पर ही अधिक विचार दिया जाता है। व्याकरण की समानता में तीन बातें दिखायें हैं—(१) प्रत्यय में अन्तर्गत (Suffix) के योग से अन्य शब्द की रचना तथा (२)





है। कभी-कभी स्वर-भेद से अर्थ विरहीत हो जाता है। अर्थ बोधना है परन्तु होक्मिनोन्ता का अर्थ खोलना है। गुण कोमलता, माधुर्य तथा काव्यात्मकता है। दक्षिणी प्रधनियाँ भी प्राप्त होती हैं।

सूडान परिवार की भाषाओं का प्रचलन भूमध्य-रेखे हेमेटिक परिवार के दक्षिण में है। कुछ भाषाएँ लिपिबद्ध साम्य रखती हैं। चीनी भाषा की भाँति ये अयोगात्मक तप परिवार की भाषाएँ ध्वन्यात्मक हैं तथा मुर तथा तान कें जाता है। विभक्तिव्यो का निरन्तर अभाव है।

हेमेटिक परिवार का विस्तार सम्पूर्ण अफ्रीकी प्रदेश में है। की कतिपय भाषाओं में धार्मिक साहित्य तथा प्राचीन शिलालेख हैं। इन परिवार की भाषाएँ स्निष्ट योगात्मक हैं। पद-रचना प्रसंग दोनों का प्रयोग होता है तथा स्वर-परिवर्तन से अर्थ बदल जा सक्रि का प्रयोग बल देने के लिए होता है, जैसे गोइ (काटना) से बार काटना) बनता है।

सेमेटिक परिवार की भाषाओं का प्रयोग मोरक्को से म्वेज होता है। इसका प्रधान क्षेत्र एशिया है। सेमेटिक और हेमेटिक में की दृष्टि से पर्याप्त साम्य है। इनमें धातु प्रायः तीन व्यंजनों की होत स्वर तथा प्रत्यय से शब्द-निर्माण होता है, जैसे कृत्-न् से हितिल केवल व्यक्तिवाचक सज्ञाओं में मिलता है। 'त' स्त्रीलिंग का चिह्न है य 'य' या 'ह' हो गया है जैसे मजक (राजा) से मलकह (रानी)। इस धरवी भाषा, धर्म, ज्योतिष, गणित, दर्शन, साहित्य और रमायन की दृष्टि घनी है।

यूरोशिया खण्ड

यूरोशिया खण्ड समस्त भू-भाग में मानव-वस्यता और संस्कृति का ग्योन त केन्द्र रहा है। अतः इस क्षेत्र की साहित्य-निधि विरविन और मुख्यवर्ति रही है, अतः इस खण्ड की भाषाओं का अध्ययन और संस्कृति



समृद्धि की दृष्टि से प्रसिद्ध है।

४. एकाक्षर परिवार—चीनी भाषा की प्रमुखता के कारण इनको चीनी परिवार भी कहते हैं। इसका क्षेत्र चीन, स्याम, तिब्बत और बर्मा तक विस्तृत है। भारोपीय परिवार के पश्चात् भाषा-भाषियों की दृष्टि से सबसे बड़ा है। चीनी-भाषा में विश्व का सर्वप्रचीन साहित्य प्राप्त होता है। चीनी भाषा में इतनी क्षमता है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचारों को सरलता से अभिव्यक्त कर सकती है। इस समुदाय की भाषाएँ अयोगात्मक तथा स्थान प्रधान हैं। प्रत्येक शब्द एकाक्षरात्मक तथा अव्यय के रूप में किसी भी स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। इन शब्दों की संख्या पाँच सौ से एक सहस्र के मध्य है। अधिक तथा अनेक अर्थ के प्रकट करने के लिए सुर या तान का उपयोग होता है। स्पष्टता के लिए द्वित्व का प्रयोग किया जाता है, जैसे ताम्रो-लू के एक साथ प्रयोग से अनेकाथों में सड़क का अर्थ ले लिया गया है। एक ही शब्द स्थान और आवश्यकतानुसार सज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि बन जाता है। यहाँ अनुनासिका ध्वनियों का अधिकतर प्रयोग होता है। 'ङ' और 'ञ' के उच्चारण का बाहुल्य इस चीनी भाषा में मिलता है। भनानी और स्यामी पर चीनी का साहित्य इन भाषाओं में सुरक्षित है। बौद्ध धर्म सम्बन्धी

५. द्विविध परिवार—यह वर्ग नर्मदा, गोदावरी के दक्षिण दिशा में समस्त भारत में फैला हुआ है। इनको तामिल परिवार भी कहते हैं। यह वाक्य और स्वर की दृष्टि से पुराल-प्लटाई परिवार के अनुरूप है। ये भाषाएँ अक्षिपट्ट यागात्मक हैं। प्रत्यय और समास का प्राधान्य है। इस परिवार की विशेषताएँ मुख्य ध्वनियाँ (द्वयं) हैं। इन भाषाओं में दो वचन और तीन लिंग होते हैं। ननुंसक शब्द प्रायः एकवचन होते हैं। मलयम, पल्लड़, तामिल तथा तेलगू इस परिवार की विकसित भाषाएँ हैं। धातु-भाषाओं में शान्त पर धातु (सेर छटीरु, दत्ता-प्राना) मान तथा मुख्य ध्वनियाँ तथा धति, नीर, योन, प्रट्टी, कडिन, वोन आदि द्वितीय परिवार की देन हैं।

६. आग्नेय परिवार—इसको आस्ट्रिक परिवार भी कहा गया है। यह प्रान्त-गार के डोंगों, रान, बर्मा के बगलों में, नीलोबार, आगाम की



इन परिवारों को प्रास्ट्रोनेशियन परिवार या मलय पालिनेशियन परिवार के नाम से अभिहित किया जाता है। प्रथम तीन परिवारों को मलय-पालिनेशियन परिवार भी कह दिया जाता है। इन परिवारों का एक स्रोत होने के कारण से बहुत भी बातों में समानता है। प्रायः इस खंड की भाषाएँ प्रसिद्ध योगात्मक हैं। प्रायः धातुएँ दो अवस्थाओं की होती हैं। स्वरापाठ बतात्मक है। पद-रचना के लिए प्रादि, मध्य तथा अन्त में शब्दों का योग कर दिया जाता है। ये सभी भाषाएँ शनैः-शनैः वियोगात्मक हो रही हैं।

### अमरीका खंड

इस खंड के अन्तर्गत उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका की भाषाएँ आती हैं। इस खंड की चार सौ भाषाओं को तीस वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। ये सभी भाषाएँ प्रसिद्ध योगात्मक हैं। वाक्य-रचना के लिए शब्दों की प्रधान ध्वनि या अक्षर के योग से वाक्य एक लम्बे शब्द रूप में बन जाता है। वेरो भाषा का नाधोलिनिन (हमारे पास नाव लाओ) इसका एक उदाहरण है। मय प्रादि कुछ भाषाओं में लिपि और साहित्य दोनों ही उपलब्ध होते हैं। इन भाषा-परिवारों का सम्यक् अध्ययन न होने के कारण इसका वैज्ञानिक विभाजन या वर्गीकरण सम्भव नहीं हो सका है। अध्ययन की सामग्री का भी इस खंड में अभी नितान्त अभाव है।

प्रश्न १२—भारोपीय (आर्य) मनुष्यों के मूल निवास-स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिये। (प० वि० १९५३, दि० वि० १९५४)

भारोपीय भाषाओं का क्षेत्र सर्वाधिक उन्नत है और उसकी सम्यक्ता और संस्कृति विश्व भर में सर्वव्याप्त समझी जाती रही है। अगर विज्ञान के पर्यवेक्षण के आधार पर समस्त भारोपीय भाषाओं का मूल एक स्रोत है तो यह भी निश्चित है कि सर्वप्रथम भारोपीय लोगों का निवास-स्थान एक ही रहा होगा। यह संभव हो सकता है कि परिवार की वृद्धि होने से उनका विश्व के अन्य प्रदेशों की ओर निष्क्रमण हो गया हो। ये भारोपीय मनुष्य आर्य ही थे, इसमें अधिकतर विद्वान् एकमत हैं। कुछ विद्वान् इनको 'विरोम्' भी कहते हैं। साहित्य, ज्योतिष, पुरातन, मानव-विज्ञान, भाषा-विज्ञान, प्राचीन भूगोल प्रादि



मतों की कल्पना वेद-पुराण आदि प्राचीन साहित्य के आधार पर की गई है। भारतीय साहित्य में कहीं पर भी स्पष्ट रूप से आर्यों के बाहर से आने का उल्लेख नहीं मिलता है।

खण्डन—भारत में आर्यों की आदि भूमि होने की संभावना के विरुद्ध विद्वानों द्वारा निम्न प्रश्न उठाये गये हैं—(१) इस परिवार (भारोपीय) की अधिकांश भाषाएँ यूरोप और एशिया के सधिस्यल पर या यूरोप में हैं, भारत के आसपास नहीं हैं। ऐसी स्थिति में भारत से निष्क्रमण की संभावना कम है। यह संभावना अधिक है कि उधर से एक शाखा आई और उसी के लोग भारत के उत्तरी भाग में बस गये, शेष लोग वही आसपास रह गये।

२. यदि भारत आर्यों का मूल-स्थान रहता तो सम्पूर्ण भारत में एक परिवार मिलता। उत्तर में ब्राहुई तथा दक्षिण में तामिल-तेलुगु का मिलना इसके विपक्ष में पड़ता है।

३. मोहन-जो-दड़ो का काल ऋग्वेद के पूर्व का है। यदि उसकी भाषा संस्कृत से मिलती-जुलती होती तो यह मान्य हो सकता था कि मूल-स्थान भारत में था। परन्तु वहाँ की भाषा द्रविड परिवार की मानी जाती है, अतः यह संभावना है कि वहाँ के प्रादियांगी द्रविड़ थे। आर्य पश्चिम या पश्चिमोत्तर से वहाँ आये।

४. तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के आधार पर हिन्दी या त्रिपुमानिक भाषाएँ मूल भाषा से संस्कृत की अपेक्षा अधिक निकट हैं। अतः मूल-स्थान की सम्भावना हिन्दी के समान है।

५. जातीय मानस-विज्ञान, जनवासु-विज्ञान, प्राचीन भूगोल तथा तुलनात्मक भाषा-शास्त्र के आधार पर न केवल यूरोपीय प्रविष्टि और मर देमाई जैसे भारतीय विद्वानों ने भी मूल-स्थान की खोजना भारत के बाहर ही की है।

(घ) मूलस्थान की भारत से बाहर स्थिति—भारतीय विचारधारा के अनुसार मानस-वृष्टि का प्रारम्भ त्रिविष्टप (त्रिषत) स्थान में हुआ और उसी को आर्य लोगों का मूल-स्थान माना जाता है। कहा जाता है कि आर्यों के विस्तार का मोक्ष यही स्थान है। वैदिक मनुष्यों की प्राचीन खोजों में



‘सप्तसिन्धु’ का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है तथा प्रवाचीन ऋचाग्रो में पूर्व प्रदेशों की ओर सकेत भी मिलता है । इसी आधार पर कुछ मत भी दिये गये हैं—

(१) प्रविनाशचन्द्रदास ‘सप्तसिन्धु’ प्रदेश को घायों का मूलस्थान मानते हैं ।

(२) सर देमाई ने घायों का प्रादि-न्योत रूप में बालकन भील के समीप माना है । उनके कथनानुसार आज भी उक्त प्रदेश में ‘सप्तसिन्धु’ नामक स्थान है ।

(३) लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपनी पुस्तक ‘आर्कैटिक होम इन दी वेस्ट’ में इस विषय में एक गवेषणात्मक लेख प्रस्तुत किया है जिसमें घायों के मूल निवास-स्थान को उन्होंने उत्तरी भू-वृत्त के निकट माना है । उनका कथन है कि हिम प्रदेश से घायों का निष्क्रमण अन्तिम ‘हिमयुग’ के समय हुआ था । प्रमाण में उन्होंने ऋग्वेद की ऋचाग्रो तथा त्रीन के हिमयुग विद्वानों का सहारा लिया है ।

‘ऋग्वेदिक इण्डिया’ नामक पुस्तक में दाम ने त्रिक के इस मत का अग्रहण किया है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि घायों का निवास-स्थान सरस्वती नदी का हिमाचल मध्यवर्ती उद्गम स्थान था । मनुस्मृति प्रादि प्राचीन ग्रन्थों में ‘ब्रह्मावर्त’ के महत्व और गुण का वर्णन इसी दृष्टि से किया गया है । कहा जाता है कि इस स्थान से घाय लोग ईराक में बसे ।

(४) पंडित राहुल साह्यायन का मत है कि बोगा के घातपात एक जनसमूह था जिसके दो वर्ग हो गये । एक तब जो पश्चिम की मुहब्बत, दूसरा वर्ग अरबों की भारत आया ।

(५) यूरोपीय विद्वानों में गहराई और बेजानिबना की दृष्टि से इस प्रश्न में प्रथम नाम प्रायः मैक्समूलर का दिया जाता है । इनके अनुसार मूल स्थान बार्थार का पहाड़ी तथा उसका पास मध्य एशिया में सबब था ।

(६) डा० जेम्स जे एबेन्हायडन आपाही की प्रवृत्ति आधार मानकर आपाही का मूलस्थान यूरोप में माना है वह भी एबेन्हायडन का एक मत है । प्रस्ता-

जानिविज्ञान के अध्ययन के अनुसार इसी निष्कर्ष पर पहुँचा।

(७) इटैलियन मानव शास्त्रवेत्ता मेर्ज़ो ने एशिया मूल स्थान का अनुमान लगाया है। हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध पुष्टि होती है।

(८) डा० गाडन ने 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, मूल स्थान के आसपास भारतीय मूल-स्थान माना है।

(९) नेहरिंग (Nehring) ने मिट्टी के बतनों के अवशेषों की रचना को मूल-स्थान माना है। कुछ विद्वानों ने मानव-विज्ञान पर जर्मनी को मूल-स्थान माना है।

(१०) इतिहास-पूर्व पुरातत्व के आधार पर मब तथा कुछ पश्चिमी-बाल्टिक तट को मूल-स्थान कहा है।

(११) हर्ट ने आदि स्रोत पोलेण्ड में विश्वना नदी के तट पर इस मत के अनुसार उनके पश्चिमी तट पर केन्दुम् तथा पूर्वी तट पर भाषा-भाषी जन रहते थे। यह मत 'तोखारी' नाम केन्दुम् भाषा के प्रायः निराधार हो गया है।

(१२) स्त्राव भाषा-शास्त्री प्रो० थ्रेंडर ने दक्षिणी रूप में बोलने वाले और कैस्पियन सागर के उत्तरी तट के निकटवर्ती प्रदेश को मूल माना है। कई विदेशी विद्वान इससे सहमत हैं।

(१३) डा० ब्रान्देन्स्टाइन ने (१९३६ में) तुलनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर मध्य एशिया वाले मत को पुनः स्थापित किया और यूराल पर्वत-माला के दक्षिण में स्थित प्रदेश को मूल-स्थान माना है।

(१४) उपर्युक्त मतों के प्रतिरिक्त नियुवानिया, बाल्टिक सागर के दक्षिण पूर्वी तट, मेसोपोटामिया या दक्कन-क़रात सरिताओं के तट पर, प्रशिया, डेन्यूब नदी के किनारे, रूसी तुर्किस्तान आदि कई अन्य प्रदेशों के मूल स्थान होने के पक्ष में भी मत प्रकट किये गए हैं। गाडन, थ्रेंडर तथा ब्रान्देन्स्टाइन के मत अब तक अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध माने गए हैं।

ब्रान्देन्स्टाइन (Brandenstein)



इस भाषा-भाषिणी के पूर्व रई हाथ । शून्य-ही घोर निरन्तर ने भी गयी  
गमना-गमना की है । इस प्रकार धातु-निक ध्वनि-विज्ञान विज्ञान एगिना वास्तव  
की ही धातु के धातु-विज्ञान को ज्ञान-करने है । ध्वनि ध्वनि ध्वनि के  
गमने में निहित है । धातु है धातु न हीन गोप-काशी ने इस पर प्रकाश पड़  
गकेगा ।

धारा ११ - रूपा-परिवर्तन या भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन किस प्रकार  
होता है और इस परिवर्तन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं ?

का शानुसार शब्द या पदों का रूप बदलता रहता है यह परिवर्तन कभी  
दुर्गमति से होता है तथा कभी धीरे-धीरे । इन परिवर्तन से भाषा के रूप  
धपसा गठन में विकार पैदा होता है । हम कह सकते हैं कि भाषा-गठन  
तथा रूपा-रचना के धन-गमन शब्दों में होने वाले विकार को रूपा-परिवर्तन कहते  
हैं । परिवर्तन पदसम्बन्धी रूपा-ध्वनि तथा धर्म तीनों में ही होते हैं । ध्वनि-  
परिवर्तन उच्चारण सम्बन्धी होता है और यह भाषागत निशिष्ट ध्वनि-वर्तनों  
पर सर्वत्र धपना प्रभाव डालता है परन्तु रूपा-परिवर्तन प्रत्यय विभक्ति धादि के  
द्वारा शब्दों की बनावट में विकार पैदा कर देता है । यह केवल शब्द या पद के  
रूप को ही प्रभावित करता है तथा भाषा के पूरे सम्बन्ध से उनका कोई संबंध  
नहीं है । 'वत्स' से बछड़ा में 'रव' का 'छ' में परिवर्तन ध्वनि-सम्बन्धी है परन्तु  
बछड़े, बछड़ी धादि में लिंग तथा वचन सम्बन्धी परिवर्तन रूपात्मक है । इसका  
सम्बन्ध ध्वनि या धर्म से नहीं है । रूपा-परिवर्तन का क्षेत्र व्याकरण-आत्मक रूपा-  
प्रत्यय, विभक्ति, लिंग, वचन धादि है ।

व्याकरणिक रूपों में विकार संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, लिंग, वचन,  
कारक सम्बन्धी प्रत्ययों के द्वारा होता है । संस्कृत की संज्ञा, सर्वनाम क्रियाओं  
का रूपा-संयोगात्मक या तथा क्रमिक विकास के अनन्तर हिन्दी में यह वियो-  
गात्मक हो गया । 'गन्तु' एक शब्द था, हिन्दी में पहुँचते-पहुँचते 'जाता है'  
दो शब्दों के रूप में विकसित हो गया । संस्कृत के सकार, पुरुष, वचन और  
लिंग ने रूप हो गये और कहीं-कहीं लुप्त हो गये हैं । इस प्रकार भाषा



## रूप-परिवर्तन के कारण

(१) सरलता—जैसा कि ऊपर कहा गया है भाषा तथा शब्द के अन्वय रूपों से भस्तिष्क पर अनुचित बोझ पड़ता है। इन अपवादों को नियमानुसार ढालने के लिए मनुष्य को सरलता के लिए नये रूपों की रचना करनी पड़ती है। उदाहरण स्वरूप संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी के क्रिया और कारक के रूपों में एकलानता या गई है। ध्वनि-परिवर्तन में प्रयत्न-न घब का जो स्थान है, रूप-परिवर्तन में सरलता का वही स्थान है। लोग उच्चारण तथा स्मरण की सरलता के लिए अन्य प्रचलित रूप के सादृश्य पर नवीन रूप का निर्माण कर लेते हैं। जैसे पञ्चाशत्य के वजन पर नये शब्द पौर्वात्य की रचना की गई। इस प्रकार के अनेक विकार रूपों में परिवर्तन कर देते हैं।

(२) अज्ञानता—नवीन रूप-रचना में अज्ञानता भी अपना कार्य करती है। अज्ञानता-वश नए रूप बन जाते हैं और प्रचलित हो जाते हैं। मरना से मरा, धरना से धरा की भाँति करना से 'करा' रूप गुड़ है पर अज्ञानवश देना से दिया और लेना से लिया के सदृश करना से किया रूप प्रचलित हो गया जो व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध होते हुए भी व्यापक रूप से इसका प्रयोग किया जाता। 'मैंने करा' गुड़ होने हुए भी अशुद्ध माना जाता है। इस प्रकार व्याकरण के अशुद्ध रूपों का व्यवहार भाषा में लगातार हो रहा है। संस्कृत के शब्द का सदृश रूप, लक्षणता, मौख्यता तथा सादृश्यता आदि उदाहरण खोजने पर निश्चय सके हैं। लोक-भाषाओं में कुटिलताई, मिश्रताई, मुषर-ताई आदि स्थान में पाते हैं। सादृश्य के आधार पर इन अज्ञानता के कारण साहित्यिक भाषा में भी अन्तर्कथा, अन्तर्भाव, राजनैतिक तथा उपरोक्त जैसे अशुद्ध रूप प्रचलित हो गये हैं।

(३) नवीनता की प्रवृत्ति—इसपर हिन्दी साहित्य में नवीन शब्दों के निर्माण की प्रवृत्ति चरम पड़ी है। नूतन शब्द-निर्माण के लिए विविध रूप से उपसर्ग और प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। मृदुता के लिए मांस्य, निद्रित के लिए विनिद्रित, प्रवर्त्ता के लिए प्रावर्त्त आदि शब्द इस प्रवृत्ति के चोख हैं।

(४) स्वयत्ता—प्राचीन भाषा में एकवचन तथा बहुवचन के स्पष्ट करने









जिष्ट तथा सामान्य रूप से बैठिये शब्द का प्रयोग किया जाता है । जो समाज जितना ही अधिक सम्य तथा सुसंस्कृत होगा अर्थ-भेद की मात्रा उतनी ही भाषा में मिलेगी ।

(४) भ्रम या मिथ्या प्रतीति का नियम (Law of False Perception) — किसी शब्द के रूप को देखकर हमें कभी-कभी भ्रमवश उस शब्द के अन्य अर्थ का भाव होने लगता है और आगे चलकर वही भ्रामक अर्थ प्रचलित हो जाता है । फलतः अर्थ में विकार पैदा हो जाता है । यही मिथ्या प्रतीति का नियम है । स्वराघात तथा वलाघात से इस प्रकार के रूपों का सर्वप्रथम निर्माण हुआ और बाद में वही ग्राह्य होकर व्याकरण का अंश बन गये । व्याकरणिक उद्योतन से शब्दों में प्रकृति प्रत्यय का ज्ञान न होने से उनका रूप भ्रमवश सामान्य तथा स्वाभाविक समझ लिया गया । यथा ध्रेष्ठ (=सबसे अच्छा) का निर्माण प्रशस्य + इष्टन् से हुआ है । इष्टन् प्रत्यय की प्रकृति का स्वरूप स्पष्ट न होने से इसे मूल शब्द समझा जाने लगा । इसके भी प्रत्ययान्त रूप ध्रेष्ठ, ध्रेष्ठतर,

इन मुष्ट विभक्तियों के अस्तित्व को बनाए रखने की मनोवृत्ति कभी कभी भाषा में दिखाई पड़ जाती है, जैसे हठात्, दैवात् दैववशात् आदि । नूरम दृष्टि ने अर्थ परिवर्तन का मूल भी ऐसे रूपों में दृष्टिगत होता है, यथा कृपया का अर्थ 'कृपा से' न होकर 'कृपा करके' लिया जाता है । इसी प्रकार परिणामत का अर्थ 'परिणाम से' ( पञ्चमी प्रत्यय का रूप ) न लेकर 'परिणाम स्वरूप' के अर्थ में लिया जाता है । भोजपुरी रूप 'परे', 'दुवारे' में सप्तमी—'ए' का मूल रूप अब भी सुरक्षित है ।

(६) नये लाभ के नियम—भाषा में जब एक ओर कुछ प्रत्यय, विभक्तियों का लोप होता है तो दूसरी ओर नए रूपों ओर अर्थों का विकास होता है । प्रसिद्ध भाषाविद् बोल ने, कर्मवाच्य, प्रिया-विशेषण, अव्यय तथा कृदन्त को ह्राम के परिणामस्वरूप नवीन रूपों में लिया है । उनके मत में ह्राम हुए रूपों

जिए तथा सामान्य रूप से बँठिये। शब्द का प्रयोग किया जाता है। जो सम-  
त्रितना ही अधिक सम्य तथा सुमस्तुत होगा धर्म-भेद की मात्रा उतनी  
भाषा में मिलेगी।

(४) भ्रम या मिथ्या प्रतीति का नियम (Law of False Perception)  
किसी शब्द के रूप को देखकर हमें कभी-कभी भ्रमवश उस शब्द के अन्य  
का भाव होने लगता है और प्रागे चलकर वही भ्रामक धर्म प्रचलित हो जा-  
ता है। फलतः धर्म में विकार पैदा हो जाता है। यही मिथ्या प्रतीति का नियम  
है। स्वरपात तथा बलापात से इस प्रकार के रूपों का सर्वप्रथम निर्माण हुआ  
और बाद में वही ग्राह्य होकर व्याकरण का अंश बन गये। व्याकरणिक उपा-  
तन से शब्दों में प्रकृति प्रत्यय का ज्ञान न होने से उनका रूप भ्रमवश सामान्य  
तथा स्वाभाविक समझ लिया गया। यथा श्रेष्ठ (=सबसे अच्छा) का निर्माण  
प्रशस्य + इष्टन् से हुआ है। इष्टन् प्रत्यय की प्रकृति का स्वरूप स्पष्ट न होना  
से इसे मूल शब्द समझा जाने लगा। इसके भी प्रत्ययान्त रूप श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर  
श्रेष्ठतम रूप में प्रयुक्त होते हैं। ज्येष्ठ भी इसी प्रकार का रूप है।

शब्द रूपों की इस मिथ्या-प्रतीति से धर्म के उत्कर्ष और अपकर्ष का भाव  
भी हो जाता है। प्राचीन साहित्य में असुर का धर्म 'देवता' या जिसकी रचना  
असु = प्राण शब्द में हुई परन्तु अब इसका अपकर्ष अ + सुर = राक्षस के धर्म में  
हो गया है। साहसी का पूर्व धर्म 'डाकू' या परन्तु उत्कर्ष होकर इसका प्रयोग  
अदम्य उत्साह के लिए होने लगा। भ्रमवश कभी-कभी दुहरे प्रयोग चल जाते  
हैं। जैसे परन्तु फिर भी (एक प्रयोग उचित है), गुन रोगन (=तेल) का तेल,  
गुलमेहदी का फूल (गुल = फूल), हिमाचल पर्वत मलयगिरि (=पर्वत) पर्वत,  
काबुल वाला के स्थान पर काबुलीवाला आदि शब्दों के द्वित्व रूपों का प्रयोग  
प्रचलित है।

(५) विभक्तियों के भगनावशेष का नियम (Law of Survival  
tions) — जैसे भाषा सयोगावस्था से वियोगावस्था की  
तो ध्वनि लोप के कारण विभक्तियों का लोप हो जाता है  
कारक-बिह्व या परसर्गों का प्रयोग होने लगता है।  
कृतियों का लोप होकर परसर्ग जुड़कर विभक्तियों -

इन मुक्त विभक्तियों के अस्तित्व को बनाए रखने की मनोवृत्ति कभी कभी भाषा में दिखाई पड़ जाती है, जैसे हठात्, देवात् देववशात् आदि। मूलम दृष्टि में अर्थ परिवर्तन का मूल भी ऐसे रूपों में दृष्टिगत होता है, यथा कृपा का अर्थ 'कृपा में' न होकर 'कृपा करके' लिया जाता है। इसी प्रकार परिणामत का अर्थ 'परिणाम से' ( पचमी प्रत्यय का रूप ) न लेकर 'परिणाम स्वरूप' के अर्थ में लिया जाता है। भोजपुरी रूप 'परे', 'दुवारे' में मूलमी—'ए' का मूल रूप अब भी सुरक्षित है।

(६) सभे सभ के नियम—भाषा में जब एक ओर कुछ प्रत्यय, विभक्तियों का लोप होता है तो दूसरी ओर नए रूपों ओर अर्थों का विकास होता है। प्रसिद्ध भाषाविद् ब्रैल ने, कर्मवाच्य, क्रिया-विशेषण, अव्यय तथा कृदन्त को ह्रास के परिणामस्वरूप नवीन रूपों में लिया है। उनके मत में ह्रास हुए रूपों की क्षतिपूर्ति नवीन रूपों के भाषा में आने में हो जाती है। क्रिया रूपों में अव्यय कृदन्त तथा क्रिया विशेषण का अस्तित्व अर्वाचीन तथा आधुनिक अवस्था की चीज है। ब्रैल के मतानुसार जब मत्ता या विशेषण का कोई विशिष्ट रूप विभक्तियों का त्याग कर अव्यय रूप में स्थित हो जाता है तब उसका वह रूप क्रिया-विशेषण बन जाता है। उदाहरणार्थ 'चिरम् आगत्य' ( देर में आया हुआ ) में चिरम् की द्वितीया विभक्ति का ह्रास अनुभव होकर अव्यय रूप में आ गया तथा चिरम् विशेषण को क्रिया-विशेषण के रूप में ग्रहण किया जाने लगा। अस्मात् में अस्मात् दसो प्रकार के रूप हैं।

(७) उपमान का नियम—प्रचलित शब्द के अनुकरण पर नवीन शब्द की सृष्टि भाषा में होती रहती है। मानव भाव तथा रूप-मांस के आधार पर नए शब्दों का प्रयोग मरतता तथा सुविधा के लिए करता है। यह उपमान का नियम मूल तथा समान रूप की रचना में सहायक होता है। इन नियम का उपयोग भाव-प्रवाशन की कठिनाई को दूर करने तथा भाव तथा रूप में स्पष्टता लाने के लिए होता है। किसी विषय अथवा मादृश्य को चिन्तित करने में तथा अर्वाचीन और नवीन नियमों में नए रूपों की समिति पैठाने में इसका प्रबल हाथ है। अनुमान किया जाता है कि भाषाशास्त्र में शब्दों के अनेक प्रत्यय तथा रूपों परन्तु सुविधानुसार उपमान के सहारे बँदिक युगों

निए तथा सामान्य रूप से बैठिये शब्द का प्रयोग किया जाता है। जो समान जितना ही अधिक साम्य तथा गुमस्यून होगा धर्म-भेद की मात्रा उतनी ही भाषा में मिलेगी।

(४) भ्रम या मिथ्या प्रतीति का नियम (Law of False Perception)—किसी शब्द के रूप को देखकर हमें कभी-कभी भ्रमवश उन शब्द के अन्य अर्थ का भाव होने लगता है और भागे चलकर वही भ्रामक अर्थ प्रचलित हो जाता है। फलतः अर्थ में विकार पैदा हो जाता है। यही मिथ्या प्रतीति का नियम है। स्वराघात तथा बलाघात से इस प्रकार के रूपों का सर्वप्रथम निर्माण हुआ और बाद में वही ग्राह्य होकर व्याकरण का अंश बन गये। व्याकरणिक उद्योतन से शब्दों में प्रकृति प्रत्यय का ज्ञान न होने से उनका रूप भ्रमवश सामान्य तथा स्वाभाविक समझ लिया गया। यथा श्रेष्ठ (=सबसे अच्छा) का निर्माण प्रशस्य + इष्टन् से हुआ है। इष्टन् प्रत्यय की प्रकृति का स्वरूप स्पष्ट न होने से इसे मूल शब्द समझा जाने लगा। इसके भी प्रत्ययान्त रूप श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम रूप में प्रयुक्त होते हैं। ज्येष्ठ भी इसी प्रकार का रूप है।

शब्द रूपों की इस मिथ्या-प्रतीति से अर्थ के उत्कर्ष और अपकर्ष का भाव भी हो जाता है। प्राचीन साहित्य में असुर का अर्थ 'देवता' या जिसकी रचना असु = प्राण शब्द में हुई परन्तु अब इसका अपकर्ष अ + सुर = राक्षस के अर्थ में हो गया है। साहसी का पूर्व अर्थ 'डाकू' या परन्तु उत्कर्ष होकर इसका प्रयोग अदम्य उत्साह के लिए होने लगा। भ्रमवश कभी-कभी दुहरे प्रयोग चल जाते हैं। जैसे परन्तु फिर भी (एक प्रयोग उचित है), गुल रोगन (=तेल) का तेल, गुलमेहदी का फूल (गुल = फूल), हिमाचल पर्वत मलयगिरि (=पर्वत) पर्वत, काबुल वाला के स्थान पर काबुलीवाला आदि शब्दों के द्वित्व रूपों का प्रयोग प्रचलित है।

(५) विभक्तियों के भगनावशेष का नियम (Law of Survival of Inflections)—जैसे भाषा सयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर अग्रसर होती है तो ध्वनि लोप के कारण विभक्तियों का लोप हो जाता है तथा उनके स्थान पर कारक-चिह्न या परसर्गों का प्रयोग होने लगता है। हिन्दी में संस्कृत विभक्तियों का लोप होकर परसर्ग जुड़कर विभक्तियों का भाव प्रकट करने लगे।

इन मुक्त विभक्तियों के अस्तित्व को बनाए रखने की मनोवृत्ति कभी कभी भाषा में दिखाई पड़ जाती है, जैसे हठात्, देवान् देववशात् आदि। मूलम दृष्टि में अर्थ परिवर्तन का मूल भी ऐसे रूपों में दृष्टिगत होता है, यथा कृपा का अर्थ 'कृपा से' न होकर 'कृपा करके' लिया जाता है। इसी प्रकार परिणामत का अर्थ 'परिणाम से' (पचमी प्रत्यय का रूप) न लेकर 'परिणाम स्वरूप' के अर्थ में लिया जाता है। भोजपुरी रूप 'घरे', 'दुवारे' में सप्तमी—'ए' का मूल रूप अव भी सुरक्षित है।

(६) नये लाभ के नियम—भाषा में जब एक घोर कुछ प्रत्यय, विभक्तियों का लोप होता है तो दूसरी घोर नए रूपों घोर अर्थों का विकास होता है। प्रसिद्ध भाषाविद् ब्रैल ने, कर्मवाच्य, क्रिया-विशेषण, अव्यय तथा कृदन्त को ह्रास के परिणामस्वरूप नवीन रूपों में लिया है। उनके मत में ह्रास हुए रूपों की क्षतिपूर्ति नवीन रूपों के भाषा में आने में हो जाती है। क्रिया रूपों में अव्यय कृदन्त तथा क्रिया विशेषण का अस्तित्व अर्वाचीन तथा आधुनिक अवस्था की चीज है। ब्रैल के मतानुसार जब सज्ञा या विशेषण का कोई विशिष्ट रूप विभक्तियों का त्याग कर अव्यय रूप में न्यून हो जाता है तब उसका वह रूप क्रिया-विशेषण बन जाता है। उदाहरणार्थ 'चिरम् आगम्य' (देर से आया हुआ) में चिरम् की द्वितीया विभक्ति का रूप अस्तित्व होकर अव्यय रूप में आ गया तथा चिरम् विशेषण को क्रिया-विशेषण के रूप में ग्रहण किया जाने लगा। अस्मान् ने अस्मान् दनी प्रकार के रूप हैं।

(७) उपमान का नियम—प्रचलित शब्द के अनुकरण पर नवीन शब्द की सृष्टि भाषा में होती रहती है। मानव भाव तथा रूप-माध्य के आधार पर नए शब्दों का प्रयोग सरलता तथा सुविधा के लिए करता है। यह उपमान १ नियम सरल तथा समान रूप की रचना में सहायक होता है। इस नियम १ उपयोग भाव-प्रकाशन की दृष्टिनाई को दूर करने तथा भाव तथा रूप में पड़ना खाने के लिए होता है। किसी विषय अवस्था सादृश्य को अस्तिमाना खाने में तथा प्राचीन घोर नवीन नियमों में नए रूप की संगति बँटाने में इसका प्रबल हाथ है। अनुमान किया जाता है कि भारतीय बाल में शब्दों के अनेक प्रत्यय तथा रूप थे परन्तु सुविधानुसार उपमान के सहारे वैदिक युगीन

मानव ने एक रूप को नवीनता के साथ ग्रहण किया तो अवेस्ता तथा ग्रीक वालों ने उसी या दूसरे रूप को नए स्वरूप के साथ ग्रहण किया। उत्तम पुरुष वर्तमान के दो प्रत्यय थे 'मि' और 'ओ' परन्तु उपमान से उनमें भेद मिट गया। संस्कृत में 'मि' को, तो ग्रीक में 'ओ' को अपनाया गया। संस्कृत के 'अस्मि' और अवेस्ता के 'आहि' से मिला जुला रूप 'एहि' ग्रीक में मिलता है।

(८) अनुपयोगी रूपों का विनाश—जब एक भाषा में एक अर्थ वाची अनेक शब्दों का प्रचलन होता है तो प्रयोगानुसार उनमें से कुछ विशिष्ट शब्द जीवित रहते हैं तथा शेष शब्दों को अनुपयोगी समझकर उनका प्रयोग कम हो जाता है। फलतः वे नष्ट तथा लुप्त हो जाते हैं। वैदिक संस्कृत में शब्द तथा धातुओं के एक ही अर्थवाची अनेक रूप प्रयुक्त किए गए हैं परन्तु लौकिक संस्कृत तक आते-आते उनके कुछ निश्चित रूप ही अर्थाशेष रहे। शेष रूप अनुपयोगिता के कारण व्यवहृत न हो पाये। यही स्थिति लौकिक संस्कृत और प्राकृत अथवा अपभ्रंश तक रही और यही प्रवृत्ति आधुनिक हिन्दी आदि भाषाओं में भी दिखाई देती है। उदाहरण रूप में वैदिक संस्कृत में देखने के अर्थ में दो धातुएँ थी—स्पृञ् और दृञ् पर उत्तरयुग में 'पश्य' को एक ही धातु 'दृश्' का आदेश मान लिया गया। इसी प्रकार हिन्दी में संस्कृत के द्विवचन का लोप हो गया। अनेक-रूप शब्दों का लोप अधिकता से दिखाई देता है जब कि एक रूप वाले पद भाषा में प्रायः स्थिर रहे। इन रूपों का अर्थ पर भी अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है।

प्रश्न १५—अर्थ-परिवर्तन की दिशाओं के आधार का उल्लेख कीजिए। उपयुक्त उदाहरण भी दीजिए।

शब्द और अर्थ का अभिन्न सम्बन्ध है। शब्द और अर्थ का योग ही भाषा को मार्पक और भावगम्य बनाता है। वास्तव में अर्थ ही शब्द का प्राण है। बिना अर्थ प्रतीति के शब्द का अस्तित्व व्यर्थ तथा निष्कल है। भाषा परिवर्तन से शब्द और अर्थ दोनों में ही विकार पैदा हो जाता है। अर्थत्व के परिवर्तन या विनाश की अनेक अवस्थाएँ हैं। कभी शब्द के अर्थ का विनाश होकर उसका क्षेत्र व्यापक हो जाता है यथा तेन प्राचीन समय में 'जिन के मार' का जोरक का पर अर्थ सभी वस्तुओं के तनों के लिए इतरा प्रयोग होता है।



कभी अर्थ में सकोच हो जाता है। इस प्रकार अर्थ-परिवर्तन या विकास की एक दिशा नहीं अपितु विभिन्न दिशाएँ हैं।

**अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ**

अर्थ-विज्ञान के ज्ञाता ब्रूस के अनुसार अर्थ-विकास की प्रमुखतः तीन दिशाएँ हैं— १. अर्थ-विस्तार, २ अर्थ-सकोच और ३ अर्थ-दिश। कुछ अन्य दिशाएँ भी हैं जिन पर आगे प्रकाश डालना अनिवार्य है।

१. **अर्थ-विस्तार (Expansion of meaning)**—अर्थ-विस्तार में शब्दों का अर्थ एक सकीर्ण सीमा का प्रतिप्रमाण कर व्यापक रूप धारण कर लेता है। अर्थ का विस्तृत होकर व्यापक हो जाना ही अर्थ-विस्तार है। यह अर्थ-विस्तार भाषा में कम मात्रा में होता है। कारण स्पष्ट है कि भाषा के अधिक उन्नत, समृद्ध और विकसित हो जाने पर उसमें मूल्य से मूल्य और सीमित से सीमित भावनाओं को अभिव्यक्ति करने की शक्ति आ जाती है। अतः स्वाभाविक रूप से अर्थ सामान्य से विशेष की ओर विकसित हो जाता है। अर्थ सकोच का यादृश्य हो जाना है। अर्थ-विस्तार से अर्थ का सामान्य रूप बढ़ जाता है।

**उदाहरणार्थ**—‘गवेषणा’ शब्द आदि में गाय खोजने में प्रयुक्त होता था पर आज प्रत्येक शोध-कार्य तथा खोज के लिए इसका प्रयोग होता है। आरम्भ में कानें रंग को स्पर्शही कहते थे परन्तु नीली, लाल रंगनाई के लिए भी यह शब्द सामान्य रूप से व्यवहृत होता है। पूर्वकाल में पुण्य करने वाले को ‘निपुण’, कुशा लाने में चतुर को ‘कुशल’ तथा बीणा बजाने में सिद्धहस्त को ‘प्रवीण’ कहते थे परन्तु आज तीनों शब्दों का प्रयोग सामान्य रूप से सब काम में पूर्ण पठित या चतुर अर्थ में होता है। ‘गोहार’ शी के हरण पर की गई पुकार को कहते थे पर अब सब प्रकार की श्रावना ‘गोहार’ है। ‘मन्त्री’ सम्म (हण) के आधार पर हरी सम्मियों का पर्याय था, किन्तु अब सभी साग सम्मियाँ हैं। अतः अर्थ का विस्तार हो गया है। कई बार व्यक्तिवाचक सज्ञाएँ जाति-वाचक बन कर विस्तार कर लेती हैं। जैसे सड़ाई कराने वाले को ‘नारद’ तथा घर के भेदिए को ‘विभीषण’ कह देते हैं। यहाँ तो अनेक ‘कालिदास’ हैं अर्थात् कवि कालिदास के समान विद्वानों का अर्थ है।

२. **अर्थ-सकोच (Contraction of meaning)**—अर्थ का सिकुड़ना या

मानव ने एक रूप को नवीनता के साथ ग्रहण किया तो अवेस्ता तथा ग्रीक वालों ने उसी या दूसरे रूप को नए स्वरूप के साथ ग्रहण किया। उत्तम पुरुष वर्तमान के दो प्रत्यय थे 'मि' और 'मो' परन्तु उपमान से उनमें भेद मिट गया। संस्कृत में 'मि' को, तो ग्रीक में 'मो' को अपनाया गया। संस्कृत के 'अस्मि' और अवेस्ता के 'आहि' से मिला जुला रूप 'एहि' ग्रीक में मिलता है।

(८) अनुपयोगी रूपों का विनाश—जब एक भाषा में एक धर्म या चीज अनेक शब्दों का प्रचलन होता है तो प्रयोगानुसार उनमें से कुछ विशिष्ट शब्द जीवित रहते हैं तथा शेष शब्दों को अनुपयोगी समझकर उनका प्रयोग कम हो जाता है। फलतः वे नष्ट तथा सुप्त हो जाते हैं। वैदिक संस्कृत में शब्द तथा धातुओं के एक ही धर्मवाची अनेक रूप प्रयुक्त किए गए हैं परन्तु लौकिक संस्कृत तक आते-आते उनके कुछ निश्चित रूप ही अवशिष्ट रहे। शेष का अनुपयोगिता के कारण व्यवहृत न हो पाये। यही स्थिति लौकिक संस्कृत और प्राकृत अथवा अपभ्रंश तक रही और यही प्रवृत्ति माधुनिक हिन्दी प्रादि भाषाओं में भी दिखाई देती है। उदाहरण रूप में वैदिक संस्कृत में देवने के धर्म में दो धातुएँ थी—दृग् और दृग् पर उत्तरगुण में 'पश्य' को एक ही धातु 'दृश' का प्रादित मान लिया गया। इसी प्रकार हिन्दी में संस्कृत के द्वि-वचन का लोप हो गया। अनेक-रूप शब्दों का लोप अधिकता में दिखाई देता है जब कि एक ही चीज को दो भाषा में प्रायः विभक्त करते। इन चीजों का धर्म पर भी अत्यन्त प्रभाव पड़ा है।

प्रश्न १२—धर्म-परिवर्तन की दिशाओं के आधार का जहाँ अनुवृत्त उदाहरण भी दीजिए।

शब्द और धर्म का अभिन्न सम्बन्ध है। शब्द और धर्म का जो सम्बन्ध होता है वह अत्यन्त बलवान् है। वास्तव में धर्म ही है जो शब्द को जीवित रखता है। शब्द का अर्थ ही है धर्म। शब्द और धर्म दोनों में ही विचार पैदा हो जाता है। शब्द और धर्म दोनों का सम्बन्ध अत्यन्त बलवान् है। शब्द और धर्म दोनों का सम्बन्ध अत्यन्त बलवान् है। शब्द और धर्म दोनों का सम्बन्ध अत्यन्त बलवान् है।

गता का बाड़ी (स० वाटिका) घर का दीनक हो गया है।

अर्थ-परिवर्तन को निम्न दिशाएँ भी हो सकती हैं—

४. अर्थोत्कर्ष—अर्थ-प्रिकाम में कभी-कभी अर्थ पढ़ने में अधिक उन्नत अर्थ भाव को ग्रहण कर लेने हैं। इसी को अर्थोत्कर्ष कहते हैं। परिवर्तन

उदात्तता अर्थ उत्कर्ष या उन्नत हो जाता है। यह अर्थोत्कर्ष के उदा-  
ने कम ही मिलते हैं। जैसे, संस्कृत में 'माहम' शब्द बुरे अर्थ (व्यव-  
सादि) में प्रयुक्त होता था पर अब उच्च तथा गगननीय कार्य के  
प्रयुक्त होता है। यथा—मनुष्य मारण स्तेय परदागभिमर्षणम्।

पारप्यनन धैव माहस पचथा स्मृतम् ॥

इत में 'मृग' का अर्थ 'मूढ' होता था। अब 'मोहित' या 'प्रमत्त' का बोध  
करता है। संस्कृत में 'कपट' पानी 'कपट' जीव वस्त्र के लिए प्रयुक्त होता  
था, अब अर्थ मुन्दर वस्त्र के लिए प्रयुक्त होता है। ऐसे ही इण्डियन, बन्दी  
आदि शब्दों का भी अर्थोत्कर्ष हो गया है।

५. अर्थपक्षर्प—यह अर्थोत्कर्ष का विलोम है। जब अर्थ-परिवर्तन में शब्द  
के अर्थ में गिरावट आ जाती है या निम्न कोटि के भाव को प्रकट करने  
लगता है तो वहाँ अर्थपक्षर्प होता है। ये निम्न तथा बुरे अर्थ ही प्रधान  
हो जाते हैं। तथा—कबीर ने 'हरिजन' शब्द का प्रयोग भक्त के अर्थ में  
किया है, अब छलूतों का भाव उसमें समा गया है। संस्कृत का 'जुगुप्सा'  
शब्द 'गुप्' धातु में बना है जिसका अर्थ पालना या छिपाना है पर इसका प्रयोग  
अब 'घृणा' अर्थ में किया जाता है। पहले मत् और अमत् का अर्थ विद्यमान  
और अविद्यमान होता था, परन्तु अब भला-बुरा या भूठ-सच हो गया है।  
वाम-शान्त्र में प्रयुक्त होने के कारण संस्कृत के सहवाम, प्रमग, समागम, भोग  
आदि शब्द सकीर्ण बन गए हैं और उनके अर्थ में अश्लीलता के कारण अपक्षर्प  
हो गया है। कभी-कभी तत्सम शब्द ठीक अर्थ में प्रयुक्त होता है पर उससे  
निम्न अर्थ शब्द का अर्थपक्षर्प हो जाता है, यथा 'गन्धिन', 'घन' संस्कृत  
शब्द 'गन्धिणी' और 'स्तन' से निकले हैं पर इनका प्रयोग मानव के लिए न  
होकर पशुओं के लिए होता है। जैन साधुओं के लिए 'नग्न', 'नृचित' तथा  
'पापशी' का प्रयोग आदर के लिए होता था, पर उनका उद्भव रूप नगा,

सीमित हो जाना ही अर्थ-संकोच है। भाषा का विकास अर्थ-संकोच की दिशा में अधिक होना है मत इसका महत्व अपरिमित है। प्रारम्भिक युग में भाषा में शब्द सामान्य या विस्तृत अर्थ के होते रहें परन्तु मन्थना के विकास के साथ उनमें सिंगिष्ट अर्थ प्रतिपादन की भावना घानी गई और अर्थ-संकोच का प्राधिक्य भाषा में लक्षित होने लगा। अर्थ विज्ञान के मनीषी शील का कथन है—‘राष्ट्र या जाति जितनी ही अधिक विकसित होंगी उसी भाषा में अर्थ-संकोच के उदाहरण उतने ही अधिक मिलेंगे। उदाहरण के लिए—संस्कृत के ‘मृग’ शब्द का प्रयोग पशु या जानवर मात्र के लिए होता था पर अब उसका प्रयोग हरिण के लिए सीमित हो गया है। भार्या का अर्थ—‘जिमका भरण पोषण किया जाय’ अब यह पत्नी के लिए ही हो गया है। गो (गम् धातु से) का अर्थ ‘गमन करने वाला’ है परन्तु आज गाय के लिए व्यवहृत होता है। ‘मुगं’ का फारसी भाषा में अर्थ पक्षी मात्र है जैसे कि मुतुरमुगं और मुगांभी (जल-पक्षी) से स्पष्ट है। पर उर्दू, हिन्दी में पक्षी विशेष का बोध होता है। थड़ा से किया जाने वाला प्रत्येक कार्य ‘थाड़ा’ कहा जाता है पर अब मृत्यु के बाद के कार्य विशेष का ज्ञान कराता है। ढूँढ़ने पर प्रत्येक भाषा में अर्थ-संकोच के अनेकानेक उदाहरण मिल सकते हैं।

३. अर्थादेश (Transference of meaning)—विचार-साहचर्य या भाव-शक्तता के कारण एक शब्द के प्रधान तथा गौण अर्थ चलने लगते हैं किन्तु कालान्तर में प्रधान अर्थ का धीरे-धीरे लोप हो जाता है और उस शब्द का गौण अर्थ ही प्रचलित हो जाता है। इस प्रकार प्रमुख अर्थ के स्थान पर नवीन अर्थ के आ जाने को अर्थादेश कहते हैं। इसमें प्रधान अर्थ का बोध होकर गौण अर्थ का तत्स्थान आदेश हो जाता है। उदाहरणार्थ—‘गँवार’ का अर्थ पहले ‘गाँव का रहने वाला’ था। ग्रामवासी अधिकतर असभ्य और असंस्कृत होते हैं। उसी के आधार पर आजकल उसका प्रचलित अर्थ ‘असभ्य’ या ‘असंस्कृत’ है। ‘बर’ का अर्थ श्रेष्ठ या अब ‘दुलहे’ का बोध कराता है। सम्राट् अशोक ‘देवाना प्रिय’ कहा जाता था पर बाद में उसका अर्थ भूखं हो गया। प्रारम्भिक ऋग्वेदिक ऋचाओं में असुर देववाची शब्द कुछ समय बाद राक्षसवाची बन गया, दुहितृ का अर्थ दुहने वाली था, अब गौण।

बगना वा बाढी (म० वाटिका) घर का छोटा हो गया है ।

अर्थ-परिवर्तन की निम्न दिशा में भी हो सकती है

४ अर्थोत्थयं — अर्थ विज्ञान में कभी-कभी अर्थ पर न ही उचित रहने और अर्थ भाव का उल्टा हो जाता है । इसी का अर्थोत्थय कहते हैं । परिवर्तन में अर्थ में उलटाना अर्थ उत्थय का अर्थोत्थय हो जाता है । यह अर्थोत्थय अर्थ भाव में कम हो जाता है । जैसे मन्त्र में मन्त्रा मन्त्र पर अर्थ (यह बात इस धाति) में प्रयुक्त होता था पर अब उत्थय अर्थ में अर्थोत्थय अर्थ का अर्थोत्थय होता है । यथा मन्त्र मन्त्रा मन्त्र पर अर्थोत्थय अर्थोत्थय ।

प्राप्त्युत्थयः । अर्थोत्थयः अर्थोत्थयः ।

सम्भूत में 'माथ' का अर्थ 'मुह' होता था । अब माथिन का अर्थ का होता है । सम्भूत में वपुः पर्वः वपुः जीव जन्म के लिए प्रयुक्त होता था अब अस्ते मुन्दर वपुः व लिए प्रयुक्त होता है । तम ही उचित, बन्दी आदि शब्दों का भी अर्थोत्थय हो गया है ।

५ अर्थोपवर्धं — यह अर्थोत्थय का विनाश है । जब अर्थ परिवर्तन में शब्द के अर्थ में गिरावट आ जाती है या निम्न वाटि के भाव या प्रकट करने लगता है तो वही अर्थोपवर्ध होता है । ये निम्न तथा वृद्ध ही प्रधान हो जाते हैं । तथा—खीर ने 'हरिजन' शब्द का प्रयोग भक्त र अर्थ में किया है अब अक्षुब्ध का भाव उसमें समा गया है । सम्भूत का 'जुगुप्सा' शब्द 'मुष्' धातु से बना है जिसका अर्थ पालना या छिपाना है पर इसका प्रयोग अब 'घृणा' अर्थ में किया जाता है । पहले मन् और अमन् का अर्थ विद्यमान और अविद्यमान होता था, परन्तु अब भना-बुना या भूठ गच हो गया है । काम-दान्त्र में प्रयुक्त होने के कारण सम्भूत के सहवास, प्रमग, समागम, भोग आदि शब्द मकीर्ण बन गए हैं और उनके अर्थ में घटती-बढ़ती के कारण अर्थोपवर्ध हो गया है । कभी-कभी तत्सम शब्द ठीक अर्थ में प्रयुक्त होता है पर उससे निम्न तद्भव शब्द का अर्थोपवर्ध हो जाता है, यथा 'गभिनि', 'धन' सम्भूत शब्द 'गभिणी' और 'स्तन' में निकले हैं पर इनका प्रयोग मानव के लिए न होकर पशुओं के लिए होता है । जैन साधुओं के लिए 'नग्न', 'लुचित' तथा 'पापशुद्धी' का प्रयोग आदर के लिए होता था, पर उनका तद्भव रूप नगा,

सीमित हो जाता हो अर्थ-संकोच है। भाषा का विकास अर्थ-संकोच की दिशा में अधिक होता है अतः इसका महत्व अपरिमित है। प्रारम्भिक युग में भाषा में शब्द सामान्य या विस्तृत अर्थ के द्योतक रहे परन्तु सम्प्रदाय के विकास के साथ उनमें विशिष्ट अर्थ प्रतिपादन की भावना आती गई और अर्थ-संकोच का आधिपत्य भाषा में लक्षित होने लगा। अर्थ विज्ञान के मनीषी ब्रोल का कथन है—'राष्ट्र या जाति जितनी ही अधिक विकसित होगी उसकी भाषा में अर्थ-संकोच के उदाहरण उतने ही अधिक मिलेंगे। उदाहरण के लिए—संस्कृत के 'मृग' शब्द का प्रयोग पशु या जानवर मात्र के लिए होता था पर अब उसका प्रयोग हरिण के लिए सीमित हो गया है। भार्या का अर्थ—'जिसका भरण पोषण किया जाय' अब मह पत्नी के लिए रूढ़ हो गया है। गो (गम् धातु से) का अर्थ 'गमन करने वाला' है परन्तु आज गाय के लिए व्यवहृत होता है। 'मुग' का फारसी भाषा में अर्थ पक्षी मात्र है जैसे कि शुतुरमुग और मुर्गाभी (जल-पक्षी) से स्पष्ट है। पर उर्दू, हिन्दी में पक्षी विशेष का बोध होता है। यद्वा से किया जाने वाला प्रत्येक कार्य 'आद' कहा जाता है पर अब मृत्यु के बाद के कार्य विशेष का ज्ञान कराता है। ढूँढने पर प्रत्येक भाषा में अर्थ-संकोच के अनेकानेक उदाहरण मिल सकते हैं।

३. अर्थान्तर (Transference of meaning)—विचार-साहचर्य या भाव-शबलता के कारण एक शब्द के प्रधान तथा गौण अर्थ चलने लगते हैं किन्तु कालान्तर में प्रधान अर्थ का धीरे-धीरे लोप हो जाता है और उस शब्द का गौण अर्थ ही प्रचलित हो जाता है। इस प्रकार प्रमुख अर्थ के स्थान पर नवीन अर्थ के आ जाने को अर्थान्तर कहते हैं। इसमें प्रधान अर्थ का बोध होकर गौण अर्थ का तत्स्थान आदेश हो जाता है। उदाहरणार्थ—'गँवार' का अर्थ पहले 'गाँव का रहने वाला' था। ग्रामवासी अधिकतर अमन्य और अमस्कृत होते हैं। उसी के आधार पर आजकल उसका प्रचलित अर्थ 'अमन्य' या 'अमस्कृत' है। 'बर' का अर्थ धोखे या धोष 'दुनहे' का बोध कराता है। मन्नाडू अशोक 'देवाना प्रियः' कहा जाता था पर बाद में उसका अर्थ मूर्ख हो गया। प्रारम्भिक ऋग्वेदिक ऋचाओं में प्रभु देवताओं शब्द कुछ समय बाद राक्षसवादी बन गया। अग्नि का अर्थ दहने वाला था, अब गौण अर्थ 'पुत्री' के रूप में हो गया।

बगना का बाहो (म० वाटिका) घर का घोरक हो गया है ।

अथर्वान्वयन की निम्न विधाएँ भी हो सकती हैं -

४ अर्थोत्पत्ति—अथ विनाम से कभी-कभी अथ पद में अधिक उन्नत और अन्त भाग का पद बन रहा है । इसी को छातीकरण कहते हैं । परिचयन में अथ में उदात्तता अथ उत्पत्ति या उदात्त हो जाता है । यह छातीकरण के उदात्त भाग में कम ही मिलता है । जैसे मन्त्र में मातृम दन्त रूपा (अथ-चार हन्ता आदि) से प्रयुक्त होना था पर अथ उत्पत्ति रूपा मातृमन्त्र रूपा के लिए व्यवहृत होता है । यथा—मन्त्राय मातृम दन्त रूपायामिदमप्युपगम ।

प्राप्त्यन्तरे चैव मातृम पञ्चमा ह्युपगम ॥

सम्भृत में 'मन्त्र' का अर्थ 'मुद्र' होता था । अथ 'मातृम' या 'प्राप्त्यन्त' का बोध करता है । सम्भृत में कपट पक्षी कपट जाल वगैरे के लिए प्रयुक्त होना था अथ अन्ते मुन्दर वस्त्र के लिए प्रयुक्त होता है । तम ही दृष्टियन्त, दन्ती आदि दन्ती का भी अर्थोत्पत्ति हो गया है ।

५ अर्थविकल्प—यह अर्थोत्पत्ति का विनाम है । जब अथ परिवर्तन में शब्द के अर्थ में गिरावट आ जाती है या निम्न वाटिका के भाव को प्रकट करने लगता है तो वहाँ अर्थविकल्प होता है । ये निम्न तथा ध्रुव ही प्रधान हो जाते हैं । तथा—यबोरे ने 'हृदिक' शब्द का प्रयोग भक्त के अर्थ में किया है, अथ अष्टुतो का भाव उसमें समा गया है । सम्भृत का 'वृणुमा' शब्द 'वृणु' धातु में बना है जिसका अर्थ पालना या छिपाना है पर इसका प्रयोग अथ 'वृणा' अर्थ में किया जाता है । पहले सन् और अमन् का अर्थ विद्यमान और अविद्यमान होना था, परन्तु अथ भला-बुरा या भूठ-मच हो गया है । काम-दान्ध में प्रयुक्त होने के कारण सम्भृत के सहवाम, प्रसग, समागम, भोग आदि शब्द सक्रीण बन गए हैं और उनके अर्थ में अक्षतीलता के कारण अपवर्ण हो गया है । कभी-कभी तमम शब्द ठीक अर्थ में प्रयुक्त होता है पर उससे निम्न तद्भव शब्द का अर्थविकल्प हो जाता है, यथा 'गाभिन्', 'यन्' सम्भृत शब्द 'गभिणी' और 'स्तन' से निकले हैं पर इनका प्रयोग मानव के लिए न होकर पशुओं के लिए होता है । जैन माधुसो के लिए 'नग्न', 'मुचित' तथा 'पापशो' का प्रयोग आदर के लिए होता था, पर उनका तद्भव रूप नगा,

लुच्चा, पाखण्डी' का प्रयोग नीच, कपटी तथा पाखण्डी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार, बावूगीरी, यारी, दोस्ती, महाराज, महाजन का अर्थापक हुमा है।

६. अर्थापदेश—यह अर्थादेश के विपरीत है। इसमें अप्रिय तथा अमंगल सूचक बातों को प्रिय तथा सुन्दर ढंग से कह दिया जाता है। जिससे उनका दोष कम हो जाता है तथा अशोभन में शोभन तथा भयानकता में सुन्दरता दिखाई देती है। चेचक रोग के लिए माता, देवी का प्रयोग इसी का उदाहरण है। विधवा होने के स्थान पर—मिन्दूर पुँछ गया, चूड़ी टूटना, सिन्दूर छुटना आदि शब्दों का शोभनता के लिए व्यवहार किया जाता है। स्वर्गवास होना, परलोक सिधारना तथा दिवगत होना शब्दों का प्रयोग किसी व्यक्ति की मृत्यु पर आदर के लिए किया जाता है।

७. अर्थ भेद—जब किसी शब्द का अर्थ परिवर्तित होकर अन्य भाषा में भिन्नता धारण कर लेता है वही अर्थ-भेद होता है। यह अर्थ में भेद की प्रक्रिया अनायास ही बिना कारण के प्रयोग द्वारा हो जाती है।

उदाहरण के लिए—संस्कृत शब्द 'धर्म्य' हिन्दी भाषा में 'धाम' बन गया जिसका अर्थ धूप है पर बगला भाषा में पढ़वने पर इस शब्द का अर्थ 'पीनना' हो गया। हिन्दी सहन = बर्दाश्त तथा अरबी में अग्नि, संस्कृत में कुल = परिवार तथा अरबी कुल = समस्त के अर्थ में आता है।

८. अर्थ का मूर्तिकरण तथा अमूर्तिकरण—मूर्त भाव कभी-कभी अमूर्त या सूक्ष्म तथा भाव रूप में परिवर्तित हो जाता है जिसके कारण अर्थ में विचार हो जाता है। 'स्वाभिमान की रक्षा के लिए गज भर कलेजे की आवश्यकता है', इस वाक्य में कलेजे का अर्थ हृदय न होकर 'साहस' है। इसमें स्थूल अर्थ में सूक्ष्मता का समावेश हो गया है। इसके विपरीत कभी शब्द का अमूर्त अर्थ मूर्त हो जाता है। वह अर्थ भाव, क्रिया, गुण को त्याग कर निशेय पदार्थ या द्रव्य का बोध कराने लगता है। मीठा और नमकीन भाववाचक होकर कभी-कभी मिठाई के रूप में प्रयुक्त होकर मूर्त रूप धारण कर लेते हैं। रोटी मूर्त होते हुए भी जीविका का अर्थ देती है।

९. हस्तक—इसमें भाषा का प्राकृतिक प्रयोग आता है। रूपक



का अधिकांश प्रयोग किया जाता है। जैसे—वह पत्राव-केसरी है, वह तो गधा है।

१०. अनेकार्थता—एक ही शब्द प्रसंग के अनुसार अनेक अर्थों का बोध कराता है। कभी वह सीमित अर्थ में प्रयुक्त होता है कभी व्यापक अर्थ में। कभी प्रधान अर्थ के साथ अनेक अर्थ भी सम्बद्ध हो जाते हैं। जैसे पत्र शब्द में पत्र, पत्रपात, पात्र (वृष्ण पक्ष शुक्ल पक्ष) आदि का ज्ञान होता है। जैसे जड़ शब्द मूल के अर्थ में ( पड़ की जड़ ) आता है तथा उसका प्रयोग आगर तथा कारण के भाव में भी होता है यथा रोग की जड़ भगड़ की जड़।

नोट—अथ परिवर्तन की छ में दस तक की दिशाओं प्रायः पूर्व दिशाओं के अन्तर्गत ही आ जाती है। परन्तु कभी कविग यशु दत्त ने उन्नेय कर दिया गया है।

प्रश्न १६—शब्दार्थ में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं? उपयुक्त उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।

मनुष्य विवेक तथा चिन्तनशील प्राणी है। उसके चिन्तन तथा भाव की अभिव्यक्ति भाषा में परिचालित होती है। भाषा का जन्म इसी प्रकार भाषा में शब्दार्थ मानव-मनावृत्ति के अनुरूप परिवर्तन होता रहता है। मानव-विचारों में एक प्रकार की अभिव्यक्ति तथा अनेकरूपता वर्तमान रहती है। इस परिवर्तन तथा अनेकरूपता का प्र-विश्व भाषा तथा उसके अर्थ पर पड़ता है। इस प्रभाव के कारण अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। मानव की मानव-वृत्ति पर बाह्य अनेक प्रकार की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। मानव तथा शब्दार्थ इस सब बातों में साक्षित तथा परिचालित रहते हैं। अतः शब्दार्थ में विचार पंदा करने में एक साथ अनेक कारणों का ध्यान करना पड़ता है। यही कारण कभी पृथक् तथा कभी समीकृत रूप में प्रयुक्त हो पाता है। इस प्रकार अर्थ का विकास होता रहता है। अतः शब्द-परिवर्तन अनेक कारणों से होता है।

॥११॥

शब्द का अक्षरत्व—किसी शब्द के उच्चारण में जब एक विशिष्ट ध्वनि

पर बल दिया जाता है तो उस शब्द की अन्य ध्वनिया उपेक्षित होकर निर्वल हो जाती है तथा धीरे-धीरे लोप होने लगती है यथा उपाध्याय के 'भा' ध्वनि का रूप इसी बलापसरण का फल है। इसी प्रकार किसी शब्द के अर्थ के प्रधान पक्ष से हट कर बल अन्य पक्ष पर पड़ जाता है तो धीरे-धीरे वही अर्थ प्रमुख हो जाता है और प्रधान अर्थ हट जाता है।

**उदाहरणार्थ—**गोस्वामी का अर्थ 'गायो का स्वामी' था। गायो के स्वामित्व तथा सेवा की भावना से धर्म के सम्मिश्रण से इसका उत्तर अर्थ 'माननीय धार्मिक व्यक्ति' हो गया और सन्तो के लिए इसका प्रयोग हुआ। अरबी शब्द 'गुलाम' तथा अंग्रेजी का 'नेव' (knave) का अर्थ लडका था परन्तु दाम-प्रथ पर बल अपसरण के कारण इनका अर्थ सेवक तथा शरारती हो गया। 'जुगुप्सा' को पालन करने से घृणा करने के अर्थ में इसी कारण से आया।

**२. पीढ़ी-परिवर्तन—**मानव कभी भी पूर्ण तथा शुद्ध रूप में अनुकरण करने में असमर्थ रहा है। शब्द की ध्वनि या अर्थ में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य पड़ जाता है। नई पीढ़ी के लोग पुरानी पीढ़ी के शब्दार्थों का अनुकरण करते समय अनेक त्रुटियाँ कर बैठते हैं। हमारे पूर्वज पहले पत्तों पर लिखते थे। बाद वाली सन्तति ने लिखित सामग्री को पत्र समझ लिया और भोजवृक्ष की छाल पर लिखने के कारण उनको भोजपत्र के नाम में पुकारा। आज भी सुवर्ण और रजत पत्र होते हैं। धीरे-धीरे पत्र पत्रलेपन का सूचक बन गया। तेल और कुशल (कुशा लाने में चतुर) के अर्थ का इसी तरह का इनिहास है।

**३. वातावरण में परिवर्तन—**वातावरण में परिवर्तन में अर्थ-विकार हो जाना है। भौगोलिक वातावरण के परिवर्तन से अर्थ भी बदल जाते हैं। जैसे अंग्रेजी शब्द Corn नामान्य रूप से धन्न के लिए प्रयुक्त होता है परन्तु अमेरिका में यह मक्का का वाचक है। प्राचीन वैदिक ऋषियों में 'ऊष्ट्र' का प्रयोग 'जंगली बैल' के लिए होता था परन्तु बाद में ऊँट के लिए होने लगा।

शब्दार्थ में परिवर्तन का कारण सामाजिक वातावरण भी है। गिरजा-घर में उपदेशिका के लिए Mother और अस्पताल में नर्स के लिए Sister का अर्थ माता और बहिन से भिन्न होता है। व्याख्यान-दाना के लिए भाई, नव्वि का अर्थ ही अर्थ गृहीत है। तौकिर प्रयाण तथा रीति-रिवाज में परि-



कभी-कभी प्रयोगों के लिए शब्दों का व्यवहार किया जाता है। मानव-वृत्ति शब्दों की अभिव्यक्ति में अधिक ध्यान देने वाली है। पागलाना जाने को—'बाहर खड़ा', 'दौड़ खाना' तथा 'दिना खाना' और निवृत्त होना आदि कहा जाता है। गंभीरी होने को—'पाँव भारी होना' तथा पैनाब को 'बापस' तथा 'नयुनता' कहा जाता है।

बहुधा या भयानका को छिपाने का भी मानव प्रयत्न करता है।

उदाहरणार्थ—'बेचक' को देखो या माना गया है या में कै-दस्त होने को 'मुह और पैर चलना' कहा जाता है 'बेचक' में गर्मी अधिक होने को 'गोवता' कहा जाता है। कभी कभी गंद या छोटे कारों को भी मधुर शब्दों के द्वारा प्रिय बना दिया जाता है। भगो को जमाशर या मेहतर (महतर) तथा पागलाना शाक करने को 'कमाना' कहा जाता है। पंजाबी में नाई को राजा कहा जाता है। भगिन को महतरानी तथा रमोइए को महाराज या ठाकुर कहा जाता है। इन प्रकार की भावना में शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है।

७. व्यापक—व्यापक के कारण शब्दार्थ में विकार अर्थात् अन्तर्गत होता है और आगे उन शब्दों का नयोन अर्थ ही प्रचलित हो जाता है। मूल के अर्थ में 'पूरे पण्डित', 'पूरे देवता', 'दिमाग का पूरा', 'अकल का सजाना' आदि शब्द चल पड़े हैं। 'पूरे हरिश्चन्द्र के अवतार' अमृत्यवादी तथा 'लक्ष्मी के पति' दीन व्यक्ति के लिए व्यापक में प्रयोग किया जाता है।

८. व्यक्तिगत योग्यता—शब्द का अर्थ भावना पर भी अधिकांशतः टिका रहता है। एक व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत सामर्थ्य तथा भावना के अनुसार भाषा का अर्थ समझता है। उदाहरणार्थ 'शून्य' शब्द का अर्थ दार्शनिक के लिए कुछ और एक वैज्ञानिक के लिए कुछ और तथा एक गणितज्ञ के लिए कुछ और ही होगा। शब्दों में अर्थ का अनिश्चय होने पर ही एक शब्द का भिन्न-भिन्न अर्थ दिया जाता है। 'कर्तव्य' के अर्थ की एक निश्चित सीमा न होने से इसके अर्थ में भी भेद हो जाता है। इसी प्रकार के शब्द पाप, पुण्य, धर्म और कर्म हैं।

९. भाषावैशेष—भाव-शब्दलता या आधिक्य से शब्दों के अर्थ में एक

विशेषता आ जाती है और अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। क्रोध के आवेग में आकर शब्दों का विविध अर्थ में प्रयोग होने लगता है। क्रोध में उच्चरित शब्द 'बच्चू' बच्चा का वाचक शब्द न होकर तुच्छता का प्रतीक बन जाता है। उसी प्रकार 'राक्षस' और 'पाजी' में एक प्रकार की हीनता का भाव रहता है। स्नेहातिशय में भी कठोर शब्द में प्रेम तथा स्नेह का भाव परिलक्षित हो जाता है। पिता का प्रेम के आवेग में पुत्र को 'पाजी' गदहा, दुष्ट पगला तथा 'शैतान' कहना बुरे अर्थ में प्रयुक्त न होकर पुत्र की चपलता आदि गुणों का छोनक होता है।

१०. भाषांतर—जब एक शब्द एक भाषा में अन्य भाषा में प्रविष्ट होता है तो उसके भाव या अर्थ में थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य आ जाता है। जैसे—फारसी में मुग का अर्थ 'पक्षी' है पर हिन्दी में एक पक्षी विशेष का नाम है। यही अर्थ-संबन्ध हो गया है। फारसी का नदी वाचक 'दरिया' शब्द गुजराती समुद्र का अर्थ देने लगा। मस्कृत का 'नील' शब्द गुजराती में 'नीलों' बनकर हरे रंग का छोनक हो गया। हिन्दी की बाटिका (बगीचा) बंगाली में बाढी (घर) बन गया।

११. भावों की स्पष्टता के लिए अलंकार-प्रयोग—अर्थ शास्त्र के मनीषी अनेक प्रकार के अलंकारों के अन्तर्गत अर्थ-परिवर्तन का ध्यान में रखा जाता

प्रधान होगा। 'वयम' शब्द मात्तो को अन्य धर्म तथा विद्यार्थी को 'तेजनों' का धर्म देता है। यही धर्मरथा गोत्री की है।

१३. शब्दों का सक्षिप्त प्रयोग—धर्म-परिवर्तन में भी 'प्रत्यय-नापव' काम करता है। वयम शब्दों में अधिक धर्म की व्यञ्जना हो जाती है। एक शब्द प्रयोग में छूट जाते हैं; यथा रेनगाद्गो से 'रेन' रेनवे स्टेगन में 'स्टेगन' तथा मादस्ति स्थिता में 'स्थिता' हो गया।

१४. पुनरावृत्ति—कभी-कभी शब्दों के दुहरा प्रयोग चलने से धर्म-परिवर्तन हो जाता है। यद्य 'मनयागिरि पर्वत' द्रविड भाषा में मनय पर्वत को कहते हैं, मसृज में गिरि का धर्म भी पर्वत है। धन इसके द्वित्व प्रयोग से मनयागिरि एक पर्वत का नाम समझ गया। इसी प्रकार का प्रयोग विष्णुचल और हिमाचल पर्वत के प्रयोग में भी है।

१५. किसी शब्द में विशेषता का प्राप्ताध्य—रुम्पुनिस्ट साल भण्डा की विशेषता है 'साल भण्डा' नाम में पुकारे जाते हैं। साल-भण्डा और गांधी टोपी का धर्म सिपाही तथा कांग्रेसी व्यक्ति के लिए बहुत पहने से चल रहा है। इन प्रकार अनेक कारणों से धर्म-विकार हो जाता है।

प्रश्न १७—संस्कृत ध्वनि-समूह का वर्गीकृत परिचय देकर यह बताइए कि हिन्दी-ध्वनि-समूह से उसकी तुलना में क्या मुख्य परिवर्तन हुए हैं ?

### अथवा

हिन्दी ध्वनियों के विकास पर एक लेख लिखिए।

हिन्दी ध्वनियों का विकास-कम वैदिक युग से ही हमें उपलब्ध होता है। अतः हिन्दी ध्वनि-समूह का मूलधार प्राचीनतम वैदिक ध्वनि-समूह ही है। यह वैदिक ध्वनि-समूह ही पाली, प्राकृत एवं अग्न श के ध्वनि-समूह में प्रवाहित होता हुआ ईपत् परिवर्तन के साथ आज हिन्दी ध्वनि-समूह के रूप में विकसित हो गया है।

वैदिक ध्वनियाँ—प्राचीनतम ध्वनियों का रूप हमें वैदिक ध्वनियों में ही मिलता है। वैदिक ध्वनियों की संख्या ५२ है, इनमें १६ स्वर और ३६ व्यंजन

स्वर—मूल स्वर ६ है—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ए, औ ।

संयुक्त स्वर ४ हैं—ए (अइ), ओ (अउ), ऐ (आइ), औ (आउ) ।

व्यंजन—स्पर्श व्यंजन २५ हैं—कठ्य—क ख ग घ ङ ।

तान्त्र—च् छ ज झ ञ ।

मूर्धन्य—ट ठ ड ढ ण ।

दन्त्य—त थ द ध न ।

घोष्ठ—प फ ब भ म् ।

अन्तस्थ ६ है—य (इ), र, ल, व, ळ, ऴ ।

घोष ऊष्म ६ है—श ष स ।

विमर्ग = (ह)

(जिह्वामूलीय) = (उपध्मानीय)

मघोष ऊष्म १ है—ह

एक गुण धनुस्वार—(ः)

प्रायः प्राचीन काल की बहुत सी ध्वनियों के उच्चारण में विभिन्नता पाई गई है। उनमें अनेक परिवर्तन तथा विचार हो गये हैं। बहुत सी ध्वनियाँ तो गुप्त हो गई हैं। उदाहरण के लिए श्रुतप्रतिशास्य में 'श्रु' का उच्चारण यन्त्र माना गया है, वही-वही मूर्धन्य स्वर के रूप में भी उल्लेख किया गया है परन्तु 'श्रु' का उच्चारण वस्तु से तो स्पष्ट कर होने लगा। बेंटर्जी के अनुसार 'ल' (लघु वृत्त में) का उच्चारण ध्वने की Little (लिटिल) के समान है। वैदिक काल में खर्वीय ध्वनियाँ प्राधुनिक ध्वनियों की तरह नहीं लगतीं न होकर केवल वही थीं। 'ळट्' ध्वनि 'ळ' का महाप्राण है। जिह्वाग्रांश का उच्चारण 'ल' तथा उपध्मानीय का 'प्र' के समान था। बेंने 'क' के मूर्धन्य ध्वनि का कथानात्र जिह्वामूलीय तथा 'प' के मूर्धन्य ध्वनि का कथानात्र उपध्मानीय था। बाद में अनेक परिवर्तन आ गये। ध्वनि-शास्त्र के अनुसार वैदिक ध्वनियों का वर्गीकरण निम्नरूप से धनुस्वार किया जा सकता है—

	वि०	मनु०	मनु० ११८	पञ्च सङ्ग	विनिस्त ह, ह, न
धट-		६. ६		५	
पञ्च	ध ड	७. ५	पञ्च, पञ्च	धो	

५३४-१ —

	असौष्ट्र	अस्यं	मूढं	नाल्य	कन्ध	स्वर उभो
स्पर्श अन्तःप्राण	प य	त द	ट ड	ब ज	क ग	
स्पर्श महाप्राण	फ भ	प प	ठ ठ	छ झ	ख घ	
अनुनासिक	म	न	ण	ज	ङ	
प्रायिक अन्तःप्राण		ल	व			
" महाप्राण			ब ह			
उन्निष्ठ		र	प			
सर्पण	उपध्मानीय	स		श	जिह्वा-	
मज्ज स्वर	उ (व)			इ (य)	मूलीय	: ह

पाली तथा प्राकृत की ध्वनियाँ — कुछ वैदिक ध्वनियों का लोप पाली में हो गया है, दोष ध्वनियों का प्रयोग यथावत् होता है। ऋ, ॠ, नृ, ऐ, ओ, ए, अ, प्रचोप है, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय इन दस ध्वनियों का प्रयोग पाली में होता है। साथ ही ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' दो नवीन ध्वनियों का आगमन पाली में हो गया है। इसमें केवल संकार का प्रयोग किया जाता है। इसमें विसर्ग का भी प्रयोग नहीं होता है।

पाली तथा प्राकृत भाषाये ध्वनियों की दृष्टि से प्रायः समान है। मागधी के अनिर्दिष्ट अन्तः प्राकृतों में ए और अ का प्रयोग नहीं होता है। मागधी में 'स्' के स्थान पर भी 'श' का प्रयोग मिलता है। अशोक के पश्चिमोत्तरीय शिलालेखी प्राकृत में 'ए' भी मिलता है।

हिन्दी ध्वनि-समूह — हिन्दी-ध्वनि-समूह की अधिकांश ध्वनियाँ परम्परागत रूप से प्राकृत भाषाओं से आई हैं। कुछ ध्वनियों का विनाश









इन ध्वनियों के उच्चारण स्थान तथा रीति की दृष्टि से दो भेद मिले जाते हैं—१. स्वर और २. व्यंजन । जब स्वरयंत्र की तन्त्रियाँ वीणा के तंतों के सदृश आपस में भँकृत होकर भीतर से आती हुई श्वास को बाहर निकाल देती हैं तब घोष उत्पन्न होता है और स्वरों में इस घोष की स्थिति रहती है। डा० भोलानाथ तिवारी ने स्वर की परिभाषा इन प्रकार की है, 'स्वर एक घोष (कभी-कभी अघोष भी) ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा श्वास की ओर से मुख-विवर से निकल जाती है' और ऐसा कोई सकोच नहीं होता कि विनिर्मात्र भी संघर्ष या स्पर्श हो । स्वर के अतिरिक्त घोष सभी ध्वनियों में होती हैं । व्यंजन वह अघोष या सघोष ध्वनि है जिसके उच्चारण में श्वास-तन्त्रिका से आती हुई श्वास को मुख-विवर से निकलने में पूर्णरूप से अवरुद्ध कुछ मात्रा में अवरोध उपस्थित होता है । अतः स्वर और व्यंजन में यह भेद हो जाता है कि स्वरों के उच्चारण में स्पर्श या घर्षण नहीं होता, पर व्यंजनों के उच्चारण में थोड़ा-बहुत स्पर्श या घर्षण अवश्य होता है । स्वरों का उच्चारण झटके भी सरलता से किया जा सकता है किन्तु व्यंजनों का झटके से उच्चारण करने में विशेष सावधानी अपेक्षित है । व्यंजन की अपेक्षा स्वर अधिक दूर तक गुनाई पड़ता है । 'क' की अपेक्षा 'भ' की ध्वनि अधिक दूर तक गुनाई पड़ती है । इसी कारण व्यंजनों का उच्चारण अधिकांश रूप में स्वरों के सहयोग से ही होता है । स्वर तो सभी नाद माने जाते हैं पर व्यंजन कुछ नाद और कुछ स्वाभ होते हैं । सामान्य नियम के अनुसार एक ही उच्चारण स्थान से निकलने वाले 'नाद' का प्रति वर्ण 'स्वाभ' अवश्य होता है ।

जैसे—कड, तालु, मूर्छा, घोष्ठ, दन्त, दन्तमूली

नाद—ग ख ङ च ज ट

स्वाभ—क घ ट प त म

स्वरों का वर्गीकरण—स्वर बहु भेदाः ध्वनि है जो गुणविशेष से अलग-अलग मिलने वाली है । स्वरों के वर्गीकरण के प्रमुख मापक निम्नलिखित हैं—

१. दृष्टिगत से स्वरों को उच्चारण करने में प्रयुक्त अंगों के भेदों के अनुसार, स्वरों को स्वरित और अस्वरित के दो वर्गों में बाँटा जा सकता है । स्वरित स्वरों में स्वरित ध्वनि और अस्वरित स्वरों में अस्वरित ध्वनि होती है । स्वरित स्वरों में स्वरित ध्वनि और अस्वरित स्वरों में अस्वरित ध्वनि होती है ।



राग का मे घा । सभी स्वरों के ये दोनों रूप समान हैं । साधारण स्वर अनुनासिक रहित होते हैं ।

(१) स्वरतन्त्रियों की स्थिति में पर्यन्त के कारण बन्धन होने से जो स्वर निकलते हैं उन्हें घोष कहते हैं । पर्यन्त-हीन स्वरध्वनि को अघोष कहते हैं । प्रायः स्वर घोष होते हैं । अवधी में अ, इ, ए के अघोष रूप भी मिलते हैं इ ई आदि ।

(७) उच्चारण करते समय मुखध्वर की मांसपेशियाँ तथा अग कभी कभी कठोर होते हैं और कभी शिथिल अतः ये भी इस दृष्टि से शिथिल (Lax) और दृढ़ (Tense) कहे गये हैं । अ, इ, उ शिथिल हैं तथा ई, ऊ दृढ़ । ए आदि ध्वनियाँ दोनों की मध्यवर्ती हैं । कण्ठ-पिटक और चिबुक के बीच उँगली रखने से शिथिलता और दृढ़ता का अनुभव हो जाता है ।

(८) कुछ स्वर मूल (Monophthong) होते हैं तथा उनके उच्चारण में जो भी एक स्थान पर रहती है; जैसे अ, ई आदि । कुछ संयुक्त स्वरों Diphthongs में एक स्वर से दूसरे स्वर तक जाती है । यथा अवधी में अ ए (ऐ) अ ओ (औ) आदि ।

व्यंजनों का वर्गीकरण—व्यंजनो का वर्गीकरण उच्चारणोपयोगी अवयवों के अनुसार और उच्चारण भी रीति के अनुसार किया जाता है । इन्हीं को क्रमशः स्थान और प्रयत्न कहा जाता है । स्थान के आधार पर व्यंजनों के निम्नलिखित भेद हैं—

१. काकल्य या उरस्य (Glottal या Laryngeal)—यह काकल स्थान से उत्पन्न ध्वनि है । यथा—हिन्दी का 'ह' ।

२. जिह्वामूलोय (Uvular)—यह जिह्वामूलक या जिह्वापट्ट से उच्चरित होती है । जैसे ऊ, ए, ग आदि । फारसी के प्रभाव से ये हिन्दी में भी बोली जाती हैं ।

३. कंठ्य (Guttural)—कंठ तालु का अन्तिम कोमल भाग है और उसके उत्पन्न ध्वनि को कंठ्य कहा जाता है । जब जिह्वा मध्य कोमल तालु (Soft-palate) का स्पर्श करता है । जैसे क, ख, ग, घ, ङ ।



४. पार्श्विक (Lateral)—इन ध्वनियों में हवा मुँह के मध्य में रुक जाने में जीभ के प्रगत-वर्णन या पार्श्व में बाहर निकलती है, यथा 'ल' ।

५. मुष्ण (Rolled)—जीभ को गोरु को कुछ देतन की तरह लटका या मुष्ण करके पार्श्व या तानु का स्पर्श करके यह ध्वनि उत्पन्न की जाती है । इसे सोझिया भी कहते हैं, जैसे 'र' ।

६. उल्लिख्य (Flapped)—जीभ को लटका कर तानु के किसी भाग पर भटके से पीट करने पर तथा उसके हटने पर यह ध्वनि उत्पन्न होती है, जैसे 'ड, ढ' ।

७. अर्धस्वर (Semi-vowel)—इनके उच्चारण में वायु का प्रवाह बहुत धीमा होता है । ये एक प्रकार से स्वर और व्यञ्जन के मध्य की ध्वनियाँ हैं । जैसे य (इ), व (उ) ।

ध्वनि-वर्गीकरण के सिद्धान्त

स्वर-तन्त्रीय प्रयत्न—इसके अनुसार ध्वनियों के दो भेद हो सकते हैं, घोष और अघोष । हिन्दी ध्वनियों में सभी स्वर, क-वर्ग आदि पाँचों वर्गों की अन्तिम तीन ध्वनियाँ (ग घ ङ, ज झ ञ आदि) य र ल व ह ख ग आदि घोष हैं । शेष सभी अघोष हैं ।

प्राणत्व के आधार पर—श्वास-बल के आधिक्य या कम होने पर उच्चरित ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं—अल्प-प्राण तथा महाप्राण । जिनमें 'ह' की ध्वनि मिलती है ऐसे व्यञ्जन महाप्राण होते हैं, जैसे—ख, घ, छ, झ, ठ, ड, ध, न्ह, फ, भ, म्ह, रह, ल्ह, ङ आदि । शेष अल्पप्राण है ।

आम्यन्तर प्रयत्न—(Degree of openness)—इसके अनुसार ध्वनियों के स्वर और व्यञ्जन दो भेद हो जाते हैं । इसके पश्चात् स्वर के अग्र, पश्च, मध्य तथा सवृत, अर्द्ध-सवृत, अर्द्ध-विवृत और विवृत भेद हो जाते हैं । दूसरी ओर व्यञ्जन के स्पर्श, सघर्ष, अनुनासिक, पार्श्विक, लुण्ठित उल्लिख्य और स्पर्श सघर्ष भेद होते हैं । इनका वर्णन ऊपर कर दिया गया है ।

उच्चारण-स्थान—इस दृष्टि से स्वरयन्त्रमुखी, जिह्वामूलीय, कट्य, मूर्धन्य, तालव्य, वरस्य, दन्त्योष्ठ्य और द्योष्ठ्य आदि भेद हो जाते हैं ।

अनुनासिकता—इस प्रकार वर्णों के तीन





हाना; घटि=भी घागाना=घमाना ।

(ख) मध्य स्वर लोप (Syncope)—इसका प्रयोग अधिकतर उच्चारण में होता है, यथा गरबूत=गर्बूज, इसमी=इसमी, तगभन=तगभन, बरदेव=बरदेव, do not=don't ।

(ग) अन्त्य स्वर लोप—धीरे-धीरे हिन्दी के शब्द के अन्त्य स्वर का लोप हो जाता है और वे व्यञ्जनान्त होने जा रहे हैं। यथा—रान=रान्, गिता=गित्, मिय=मिम्, घाम=घाम् अन्त्य रूप—निश (म०)=नीश, जाति=जात्, शार्व=शार्व् पाम प्रादि ।

(घ) आदि व्यञ्जन लोप—ध्वनिवां के ये रूप अधिकतर हिन्दी तथा प्राकृतों में पाये जाते हैं जिनमें सशृङ्ग शब्द के आदि व्यञ्जन का लोप हो गया है । उदाहरणार्थ—कथ=कथा, स्थान=थान, स्थाली=थाली, श्मशान=मशान, knife=निफ ।

(ङ) मध्य व्यञ्जन लोप—प्राकृत तथा हिन्दी ग्रामीण बोलियों में यह लोप अधिकतर दृष्टिगत होता है, यथा बचन=बचण, प्रिय=पिय, नमिणी=गमिन, कातिक=कातिक, उपवास=उपास, डाकिन=डाइन, घरदार=घरवार, कोकिल=कोइल ।

(च) अन्त्य व्यञ्जन लोप—इसके उदाहरण कम मिलते हैं । जैसे—घात्र=घाम, उट्ट=उट्टे, सत्य=सत् ।

(छ) आदि अक्षर लोप—यहाँ अक्षर का अर्थ स्वर और व्यञ्जन का योग है । जब दो समान अक्षरों के एक साथ आने पर प्रायः एक का लोप हो जाता है । जैसे विशूल का शूल, university=varsity प्रादि ।

(ज) मध्य अक्षर लोप—भाण्डागार=भंडार, गेहूँ चना=गेहना, दस्तखत=दस्त ।

(झ) अन्त्य अक्षर लोप (Apocope)—मौक्तिक=मौकी, सपादिक=सपा, माता=माँ, निम्बुक=नीबू तथा भानूजाया=भावज ।

(ञ) समाक्षर लोप (Haplology)—अमेरिकन भाषा-विज्ञानी ब्लूमफील्ड के मतानुसार इसका अर्थ है 'एक की जानना' । इसका अर्थ है कि शब्द में एक ही ध्वनि, अक्षर या अक्षर-समूह के



रग = रगत्, परवा = परवाह; कल = कल्ह ।

भादि-प्रक्षरागम—गु जा = घुं गुची (भोजपुरी) ।

मध्य-प्रक्षरागम—खल = खरल, भालस = भालकस ।

अन्त-प्रक्षरागम—आंख = आंखड़ी, जीभ = जीभड़िया, बधू = बघूटी, आंकि = आंकिड़ा आदि ।

३. वर्ण-विपर्यय (Metathesis)—इसे 'वर्ण-व्यत्यय' भी कहते हैं। कभी-कभी स्वर, व्यंजन तथा अक्षर किसी शब्द में परस्पर ध्वनि-विनिमय या स्थान परिवर्तन कर लेते हैं, उसे वर्ण-विपर्यय कहते हैं। जैसे 'अमरुद' से 'अमरूद'। जब पास-पास की ध्वनियों में विपर्यय होता है तो पार्श्ववर्ती कहलाता है। अन्यथा दूरवर्ती ।

पार्श्ववर्ती स्वर-विपर्यय—इण्डो भाषा में lie = lei (बनाना) ।

दूरवर्ती स्वर-विपर्यय—कछु = कुछ; पागल = पगला; बिन्दु = बूंद, आदि ।

पार्श्ववर्ती व्यंजन-विपर्यय—ब्राह्मण = बाम्हन, सिगूनल = सिगल; बिहू = बिन्ह ।

दूरवर्ती व्यंजन-विपर्यय—महाराष्ट्र = मरहठा, वाराणसी = बनारस; तमगा = तगमा ।

पार्श्ववर्ती अक्षर-विपर्यय—मतलब = मतवल, बफर (अवेस्ता) = बरफ (फारसी) ।

दूरवर्ती अक्षर-विपर्यय—लखनऊ = नखलऊ, नारिकेल = नालिकेर, चाकू = काकू ।

शब्दाक्षर-विपर्यय—दो शब्दों के आरम्भ के अक्षरों में विपर्यय हो जाता है। जैसे चूल्हा-चोका = चौल्हा-चूका ।

४. समीकरण (Assimilation)—इसे सादृश्य, सावर्ण्य भी कहते हैं। इसमें स्वर या व्यंजन एक दूसरे को प्रभावित कर सजातीय वर्ण बना लेते हैं। इसके दो भेद होते हैं—पुरोगामी और परवर्गीय। प्रत्येक पार्श्ववर्गीय दूरवर्गीय से दो प्रकार का होता है।

[illegible]

ध्वजन के अतिरिक्त स्वर्ग में भी एक प्रकार का परिवार पाया है।  
पार्श्व-पुरोगामी उदाहरण मूल रूप से लग्नी = पत्नी तथा दूर पराधीन  
के आदेश—पादक आदि हैं। उसी प्रकार दूर पदवर्गात्मक में — योग्य - ... की  
इष्ट—उक्त तथा पार्श्व-पदवर्गात्मक मणीकरण में—भाष्यकी में गीतना में सब  
महलह वा 'बब इहलह' हो जाता है।

पारस्परिक ध्वजन समीकरण (Mutual Assimilation) — मे दो पद्यों-  
वर्ती व्यंजनों के पारस्परिक प्रभाव डालने के कारण दोनों ही परिणित हो  
जाते हैं और एक तीसरा व्यंजन वहीं आ जाता है। उदाहरणार्थ—म-य =  
मय, विलुन = विलनी, बडि वुभ वास बाजा, कलशिका = कलागी आदि।

५ विधमीकरण (Dissimilation) — यह समीकरण का विपर्यय रूप है। इसके व्यजन तथा स्वर दा भेद है। व्यजन के पुनोगामी विधमीकरण में प्रथम व्यजन ज्यों का त्यों रहता है और दूसरा परिवर्तित हो जाता है, यथा — काक = काग, लागूनी = लगूर, ककण = कगन, Marmor (मैर्मर) = Marble इसी के पदचगामी रूप में प्रथम व्यजन में परिवर्तन हुआ है। दरिद्र = दलिह्र। स्वरों के पुनोगामी विधमीकरण में — चिक = टिकली, पुरष = पुरिस मिथ्या है तथा पदचगामी विधमीकरण में — नुअर = नेउर, मुकुट = मउर, मुकुत = वउर।

६ सप्तोऽष्टौ—एकीभाव—सहित विवाहों का प्रति-विधायक मरदा महत्व है। कुछ व्यंजन (व, ख, य, म आदि) उच्चारण में स्वर के मरदानों के कारण वे स्वर में बदल जाते हैं और व्यंजन पूर्ववर्ती व्यंजन में मिल जाते हैं।  
उदाहरणार्थ—बाधर=धंवर बेंडर घोर नयन=नदन-नैन, धन





सामग्री के अध्ययन में निम्न कारणों पर प्रकाश पड़ा है और माने पड़ नी सरना है।

१. शारीरिक या वाक्यम्न की विभिन्नता—शारीरिक या वाक्यम्न की विभिन्नता से ध्वनियों में भेद पैदा हो जाता है। शारीरिक अवयव तथा सत्यन की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर है। साथ ही मस्तिष्क की गुरुता या लघुता के आधार पर मानव की विभिन्न तथा विवेक शक्ति पृथक्-पृथक् होती है। एक विद्वान के विचार करने की इसाई प्रशिक्षित या मूर्ख व्यक्ति से भिन्न होती है। इतना ही नहीं व्यक्ति के वाक्यम्न की रचना तथा सामर्थ्य में भी विभिन्नता है। वाक्यम्न सर्वत्र रंग, काल और स्थान से नियन्त्रित रहता है। यही कारण है कि संस्कृत के 'स्' का उच्चारण बंगाली में 'श्' और ईरानी में 'ह्' हो गया। यह रहा बोलने का क्रम। श्रवणेन्द्रिय में एक उच्चरित ध्वनि के श्रवणकार्य में भी अन्तर आ जाता है। जैसा हम एक विशिष्ट ध्वनि को सुनते हैं वैसा उच्चारण नहीं कर पाते। अतः ये अन्तर कालान्तर या सदियों के पश्चात् अध्ययन करने पर प्रत्यक्ष अनुभव किये जा सकते हैं। सहज और स्वाभाविक रूप से ध्वनियों का उच्चारण ध्वनियों में विकार पैदा कर देता है। फलतः भाषा या पद में आगम, लोप आदि हो जाते हैं।

२. अनुकरण की अपूर्णता तथा अज्ञानता—वाक्यम्न और श्रवणेन्द्रिय की कड़ी अनुकरण की प्रवृत्ति है। किसी व्यक्ति के उच्चारण का व्यक्ति पूर्ण अनुकरण नहीं कर पाता, या तो वह भाग बढ जाता है या पीछे जाता है। इसी कारण ध्वनियों में अन्तर आ जाता है। अनुकरण की अपूर्णता प्रायः बच्चों में अधिक स्पष्ट होती है। वह रोट्टी को 'लोटी' तथा चीज 'बिज्जी' कहता है। बड़ा होने पर यह भेद सूक्ष्म रूप में बना रहता है अ इसका स्पष्ट रूप विदेशी ध्वनियों के अनुकरण में मिलता है। ब्राह्मण व 'ब्राह्मण' तथा कनैवदन का 'कनस्कन' इसी कारण होता है। इस अनुकरण व अपूर्णता में अज्ञानता का भी पर्याप्त योग रहता है। किसी ध्वनि के विन निश्चित या शुद्ध-ज्ञान के उच्चारण का ठीक अनुकरण नहीं हो पाता और फल-स्वरूप ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। अक्षरविन तथा विदेशी शब्दों में यह विकार विशेष रूप से होता है। सोक-भाषा में 'मोवरवियर' का मोमेयर, कम्पाउण्डर का कम्पोडर या कम्पोटर हो गया है।





प्रयत्न-लाघव का क्षेत्र एकांगी न होकर सर्वांगी तथा विस्तृत है।

८. सादृश्य (Analogy) — ध्वनियों को स्मृतिग्राह्य तथा अपवाद-होव बनाने का श्रेय सादृश्य को है। सुगमता के उद्देश्य में अन्य ध्वनि की समानता तथा सादृश्य पर अन्य ध्वनि को ढाल लिया जाता है। यथा द्वादश के सादृश्य पर एकदश भी एकादश तथा तैंतीस के सादृश्य पर सैंतीस में अनुनासिकता आ गई है। स्वर्ग की समानता पर नरक 'नर्क' हो गया है।

९. बलाघातक और संगीतात्मकता — ये दोनों भी ध्वनि-विकार के कारण हैं। शब्द की किसी ध्वनि पर अधिक बल देने से अन्य समीपवर्ती ध्वनियाँ कम और होकर लुप्त हो जाती हैं। यथा — आभ्यन्तर के मध्य में बल का आघात होने से 'मा' का लोप होकर 'भीतर' रह गया। इस प्रकार 'उपाध्याय' से 'भा' रह गया। आराह-अवरोह के स्वर-क्रम से संगीत का स्वराघात सञ्चत तथा विवृत रूप धारण कर लेता है। इसी से 'इ' का 'ए' तथा 'उ' का 'ओ' हो जाता है, जैसे 'कुण्ड' का 'कोड़' 'बिल्व' का 'बेल' में संगीतात्मक स्वराधान की भूलक है।

१०. काव्य में मात्रा या तुक — कवि लोग अन्त्यानुशास या तुक तथा मात्रा के दृष्टिकोण से मनमाना परिवर्तन ध्वनियों में कर देते हैं। भक्तिकाल तथा रीतिकाल की कविता में यह प्रवृत्ति दर्शनीय है। विकराल का विकराल, कमल = कमलु, हथियार = हथ्यार आदि उदाहरण मिलते हैं।

११. स्वाभाविक विकास या परिवर्तन — इसको स्वयभू विकास भी कहते हैं। इसमें स्वाभाविक रूप से घिसकर शब्दों की ध्वनियाँ स्वयं विकसित हो जाती हैं।

उदाहरण — सर्प = सर्पि      मया = मै  
कूप = कुर्पा      बर्तते = बाटे आदि।

१२. विदेशी ध्वनि का प्रभाव तथा प्रभाव — किसी भाषा में अन्य भाषा की बिशिष्ट ध्वनियाँ न होने से अपनी भाषा की मिलती-जुलती ध्वनियों से उनकी पूर्ति कर ली जाती है। प्रबोधी की बरस 'ट', 'ड' ध्वनियाँ हिन्दी की मूर्द्धन्य या गलन्ध्र में परिवर्तित हो गई; जैसे — एपिटो' से 'एपड' तथा बरक में 'बरिक्त'। प्रबोधी में निचे Gupta, Mura के प्रभाव से हिन्दी में गुप्त और

मिथ के स्थान पर गुप्ता, मिथा लिखा जाने लगा है। अतः इससे भी ध्वनि में विकार हो जाता है।

१३. भौगोलिक प्रभाव—यह भी ध्वनि विकार का एक कारण है। गर्म जलवायु वाले देशों में विवृत तथा ठण्डी जलवायु वाले देशों में संवृत ध्वनियों का अधिक विकास होगा। भारी और पर्वतों से घिरे प्रदेश की ध्वनियाँ स्थिर तथा बाहरी व्याघात में होत बनी रहती हैं। इसी प्रकार पश्चिमी देश निवासी हिन्दी भाषा के दन्त्य वर्णों का उच्चारण नहीं कर सकते हैं। इसमें भौगोलिक परिस्थितियाँ काम करती हैं।

१४. सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव—सामाजिक माति में सांस्कृतिक नति होगी तथा ध्वनि शुद्ध तथा परिमार्जित रहेगी। शुद्ध या विप्लव में होने की गति तीव्र हो जाती है और भाषण-न्या में कुछ ध्वनियों में अना-मक स्वरपाठ बढ़ जाता है तथा परिणामतः कुछ ध्वनियों का लोप हो जाता। और भाषा का विकास या ह्रास तीव्र गति से होने लगता है। समास में दुर्बल स्वरों के लोप से भी बोलने की प्रवृत्ति हो जाती है और मृदु ध्वनियों की गति भ्रष्ट हो जाता है। इन प्रकार ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है।

प्रश्न २०—ध्वनि-नियम क्या हैं? ग्रिम (Grim's Law) कृति ध्वनि-नियम की सम्बन्ध समीक्षा कीजिए। क्या ध्वनि-नियम भी उसी प्रकार प्रकाश्य हैं जैसे प्रायः वैज्ञानिक नियम?

ध्वनियों में परिवर्तन नैसर्गिक रूप से होता रहता है। भाषा की कुछ ध्वनियों में ये विचार अल्पतः या पूर्णतः विनिश्चित नियमों के अधीन होते हैं। प्रायः परिस्थितियों की प्रकृति या निश्चित गति के परीक्षण पर ही ये नियम प्रकट होते हैं। जैसे साहित्य 'य' साहित्य में 'व' हो गया, यह एक नियम है। इन नियमों के अन्वय भी होते हैं, यथा मागधी साहित्य में साहित्य 'व', 'व' ध्वनि में परिवर्तित होकर 'य' रहा।

ध्वनि नियम क्या हैं?—यह प्रश्न सर्वत्र से भाषा-विद्वानों के अतिशय प्रसिद्ध है। सर्वप्रथम नियम के नियम में जानना आवश्यक है। विद्वत्-परिगणना में एक भाषा के अन्तर्गत रूप में ध्वनि होने की नियम बतलते हैं।

इसमें समय और स्थान का कोई सम्बन्ध नहीं है ये नियम सार्वकालिक या सार्वदेशिक होते हैं। पर ध्वनि-नियम में यह बात नहीं है और ये काल और स्थान को नहीं लाय सकते हैं। इनके अनेक अपवाद मिलते हैं। अतः ध्वनि-नियम उसी प्रकार अकाट्य नहीं है जैसा वैज्ञानिक नियम। इन दोनों नियमों में बहुत फर्क है।

वैज्ञानिक तथा ध्वनि-नियम में अन्तर—(१) जैसा कि ऊपर स्पष्ट है वैज्ञानिक नियम एक निश्चित परिस्थिति या कार्य में सही उतरते हैं। वे काल विशेष को अपेक्षा नहीं रखते हैं, क्योंकि ये सार्वकालिक या सब कालों में एक रूप से घटित होते हैं। उदाहरणार्थ—दो और दो चार होते हैं, और होते ये और होंगे। ध्वनि-नियमों में यह विशेषता नहीं है। यह निश्चित नहीं कि प्राचीन काल के ध्वनि-परिवर्तन आधुनिक या भावी ध्वनियों पर भी लागू होंगे।

(२) वैज्ञानिक नियम सार्वदेशिक होते हैं। न्यूटन का नियम प्रायः सर्वत्र लागू होता है पर ध्वनि-नियम देश या स्थान भेद से लागू नहीं हो पाते हैं।

(३) वैज्ञानिक या प्राकृतिक नियमों में अपवाद नहीं होते जब कि ध्वनि-नियम पद-पद पर अपवाद छोड़ते चलते हैं, संस्कृत 'नृत्य' का 'नाच' हो गया पर 'भृत्य' का 'भाच' नहीं हुआ। 'धर्म' का 'धम्म' हो गया परन्तु 'कर्म' का 'कम्म' नहीं हुआ। अतः वैज्ञानिक नियम सभी परिस्थितियों में सत्य तथा अकाट्य होते हैं परन्तु अपवादों की बहुलता के कारण ध्वनि-नियम सर्वावस्थायी में न घटित होते हैं और न अकाट्य ही। ध्वनि-नियम वर्तमान या भविष्य के सम्बन्ध में न होकर केवल भूतकाल के सम्बन्ध में होते हैं और एक विरि जातिगत भाषा के अन्तर्गत ही होते हैं। इसलिए कुछ विद्वान इन्हें ध्वनि-नि न कह कर ध्वनि-प्रवृत्ति (Phonetic tendency) ही कहना उचित समझते हैं। ध्वनियों में अपवादों का बाहुल्य ही नियम की सजा को सिद्ध कर देता है। ध्वनि-नियमों में अपवाद होने के सामान्यतः चार कारण हैं। (क) सादृश्य सबसे बड़ा कारण है। सादृश्य के कारण शब्द नियमानुसार रूप धारण न कर अन्य रूप धारण कर लेता है। (ख) विदेशी शब्दों का उधार आना भी अपवाद का महत्वपूर्ण कारण है। नवागत विदेशी शब्दों पर ध्वनि-नियम घटित नहीं होते हैं। (ग) तीसरा कारण एक भाषा के प्राचीन या वर्तमान शब्द-रूपों

का ग्रहण करता है जिन पर ध्वनि-नियम लागू नहीं होता है। (घ) अनेक बार ऐसा होता है कि अन्य भाषा का भिन्नता-जुलता रूप भाषा में अपना स्थान ले लेता है और प्राचीन शब्द का ही रूप समझ लिया जाता है। उसे भी अवयव रूप में ले लिया जाता है। जैसा कि हिन्दी शब्द कोटपाल तथा फारसी भाषा से आये शब्द 'कोतवाल' में रूप-साम्य है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिक नियम की भाँति ध्वनि नियम पूर्ण नहीं है। फिर भी ध्वनि-विषयक इन प्रवृत्तियों को ध्वनि-नियम ही कहा जाता है। ध्वनि-नियम की परिभाषा निम्न हो सकती है—

“किसी विशिष्ट भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों में, किसी विशिष्ट काल और कुछ विशिष्ट दशावस्था में, हुए नियमित परिवर्तन या विकार को उस भाषा का ध्वनि-नियम कहते हैं।”

दस परिभाषा के चार घण हैं।

(१) विशिष्ट भाषा का अर्थ भाषा विशेष है। एक विशेष भाषा विषयक नियम अन्य भाषा पर घटित नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ अरबी की फादर (FATHER) के उच्चारण में 'र' का उच्चारण न होकर 'फाद म' होता है पर हिन्दी में 'मम्बर' शब्द 'मम्बम' उच्चारित नहीं होता है।

(२) विशिष्ट ध्वनियों पर ही यह नियम लागू होते हैं, सब ध्वनियों पर नहीं, यथा FATHER में 'R' का उच्चारण न होते देख MAN में 'N' के उच्चारण का त्याग नहीं कर सकते हैं और 'मैम' न बल्कि 'मैन' हो कहेंगे।

(३) विशिष्ट काल का ही प्रयोग ध्वनि-परिवर्तन के लिए किया जाता है। उपर्युक्त 'म' ध्वनि का सोच हम प्राचीन अरबी में नहीं कर सकते हैं, यह आधुनिक काल में ही प्रयुक्त होता है।

(४) विशिष्ट परिवर्तितियों से ही कोई ध्वनि नियम बोधा जाता है। उपरोक्त उदाहरण में प्रायः यह नियम है कि वाक्य के किसी शब्द की ध्वनिम और उसके बाद के शब्द का प्रथम अक्षर ध्वनन हो तो 'धार'

लागू होता है और यदि शब्द का प्रारम्भ प्रसार ध्वनि-नियम में किसी न किसी अवस्था में है।

इसमें मध्यम धोर स्थान का कोई वायु नहीं है वे नियम सांकेतिक या काल-  
देशिक होते हैं । पर स्वातन्त्र्यधर्म में यह वायु नहीं है धोर के कारण धोर होता  
का नहीं माना जाता है । इसका धर्मक धारक विधि है । धर्म अनिवार्य  
यही अकार्य प्रकाश्य नहीं है वेध वैज्ञानिक नियम । इन दोनों नियमों में बहुत  
अंतर है ।

वैज्ञानिक तथा ध्वनि-नियम में अंतर—(१) वेध कि प्रकार का है  
वैज्ञानिक नियम एक विशिष्ट परिस्थिति या कार्य में नहीं पाते हैं । वे काल  
विशेष को छोड़ता नहीं रखते हैं, क्योंकि वे सांकेतिक या मध्य कायों में एक  
काल में परिणत होते हैं । उदाहरणार्थ—वे धोर को धार होते हैं, धोर होते वे  
धोर होते । ध्वनि-नियमों में यह विशेषता नहीं है । यह निश्चित नहीं कि  
प्राचीन काल के ध्वनि-परिवर्तन सामुदायिक या भाषी ध्वनियों पर भी लागू होंगे ।

(२) वैज्ञानिक नियम सांकेतिक होते हैं । ग्लूटन का नियम प्रायः सर्वत्र  
लागू होता है पर ध्वनि-नियम देश या स्थान भेद में लागू नहीं हो पाते हैं ।

(३) वैज्ञानिक या प्राकृतिक नियमों में अपवाद नहीं होते जब कि ध्वनि-  
नियम पद-पद पर अपवाद छोड़ते चलते हैं, सद्यः 'नृत्य' का 'भाव' हो गया  
पर 'भृत्य' का 'भाव' नहीं हुआ । 'धर्म' का 'धम्म' हो गया परन्तु 'धर्म' का  
'कम्म' नहीं हुआ । अतः वैज्ञानिक नियम सभी परिस्थितियों में सत्य तथा प्रका-  
श्य होते हैं परन्तु अपवादों की बहुलता के कारण ध्वनि-नियम सर्वावस्थाओं में  
न घटित होते हैं धोर न प्रकाश्य ही । ध्वनि-नियम वर्तमान या भविष्य के



**दस नियम—(Grim's Law)—**दस नियम की पूर्ण विवेचना करने वाले जर्मन भाषा के मर्मज्ञ याकोब ग्रिम हैं। सन् १८१६ में जर्मन भाषा का एक व्याकरण प्रकाशित किया। ग्रिम नियम का विवरण उन व्याकरण के द्वितीय संस्करण (सन् १८२२) में है। ये नियम प्राचीन भारोपीय भाषा, संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, जर्मन, गाथिक तथा प्रबोली के तुलनात्मक विवेचन के पदार्थ बनाने थे। दस नियम का सम्बन्ध भारोपीय स्वरो से है जो ग्रीक, लैटिन, संस्कृत आदि भाषाओं की तुलना में, जर्मन भाषा में विकसित होकर परिवर्तित हो गये थे। जर्मन भाषा का यह वर्ण-परिवर्तन दो बार हुआ। प्रथम वर्ण-परिवर्तन दूसरी शताब्दी पूर्व हुआ था और द्वितीय वर्ण-परिवर्तन सातवीं शताब्दी के आग-यात्रे हुआ, जब एंग्लो-सैक्सन लोग उत्तरी जर्मन लोगों से घुसकू हो गये थे। दोनों वर्ण-परिवर्तन जातीय विभेद के फलस्वरूप हुए थे।

**प्रथम वर्ण-परिवर्तन—(First Sound Shifting)—**प्रारम्भ में ग्रिम-नियम का स्वरूप इस प्रकार से था—

(१) जहाँ संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि में मघोप भ्रत्यप्राण स्पर्श होता है, वही गाथिक प्रबोली, डच आदि भाषाओं में महाप्राण ध्वनि और उच्च जर्मन में सघोप वर्ण होता है।

(२) संस्कृत आदि का महाप्राण, गाथिक आदि का सघोप उच्च जर्मन का मघोप वर्ण होता है।

(३) संस्कृत आदि का सघोप-गाथिक का मघोप उच्च जर्मन में महाप्राण होता है। सघोप में यह निम्न प्रकार से है—

संस्कृत आदि                      गाथिक                      उच्च जर्मन

(१) मघोप (क्, त्, प्) महाप्राण (ख्, घ्, फ्) सघोप (ग्, द्, ब्)

(२) महाप्राण (ख्, घ्, भ्) सघोप (ग्, द्, ब्) मघोप (क्, त्, प्)

(३) सघोप (ग्, द्, ब्) मघोप (क्, त्, प्) महाप्राण (ख्, घ्, फ्)

इस नियम में अनेक दोष देखकर ग्रिम ने (१८२२ ई० के) द्वितीय संस्करण में कुछ सुधार किए तथा भारोपीय ध्वनियों के पारस्परिक परिवर्तन को प्रथम वर्ण-परिवर्तन—... उच्च-जर्मन के परिवर्तन को द्वितीय वर्ण-परिवर्तन में



रक्ता । प्रथम वर्ण-परिवर्तन के अन्तर्गत भारोपीय भाषा की परिवर्तित स्पर्श-  
ध्वनियों का रूप इस प्रकार है—

- |                             |                            |
|-----------------------------|----------------------------|
| (क) भारोपीय मूल भाषा के घोष | जर्मनिक में घोष अल्पप्राण  |
| महाप्राण स्पर्श ष् ध् भ्    | गृ, दृ, बृ हो गये ।        |
| (ख) भारोपीय मूल भाषा के घोष | जर्मनिक में अघोष अल्पप्राण |
| अल्पप्राण ग्, द्, ब्        | क्, त् प् हो गये ।         |
| (ग) भारोपीय भाषा के अघोष    | जर्मनिक में सधर्पी अघोष    |
| अल्पप्राण क्, त्, प्        | महाप्राण ख्, (ह) थ् फ्     |
|                             | (घ), (ङ), (झ) हो गये ।     |

मूल भारोपीय भाषा की ये स्पर्श-ध्वनियाँ संस्कृत, ग्रीक और लैटिन में  
तथा जर्मनिक ध्वनियाँ गॉथिक और निम्न जर्मन (घरेलू) में सुरक्षित हैं ।  
उदाहरणार्थ—

संस्कृत	ग्रीक	लैटिन	अंग्रेजी	गणिक	जर्मन
हंस	khen	(H) anser	goose गूज	gans गस	प्रचीन उच्च जर्मन (मा० उ० ज०)
वित्तः धा	Thesis	thesis	deed डीड	—	gans-deds, tat टाट
विभवा	—	—	widow विडो	—	—
धम	—	—	dust डस्ट	—	—
भरामि	Pheretn	fero	bear बीअर	—	bairen
भ्रातृ	—	—	brother ब्रादर	—	—
भवा (मि)	Phuo	—	be बी	—	pim (मा० उ०)
युगम्	zugon	iugum	yoke योक	Juk	Jock (यास जग)
गो	—	—	cow काउ	—	—cu
दश	—	decem	ten टेन	raihun	zehn (जेस)
दो	—	—	two टू	—	—zwei
—	dela	labium	lip लिप्	—	—
—	—	Lomba	lap लेप	—	—
*स्तेडव	—	—	slip	—	—
क.	—	quo	who हू	hwo	hwer
कद्	kunos	quod	what	hwes	was
दुन.	—	canis	hound	hund	hund
(प्रचीन क् के स्थान पर व्)	—	—	(h=kh)	—	—

(क) 'व्' से ग्

'घ्' से 'द्' (ङ)

म् से द्

(ख) ग् से ब्

द से त् (ट)

व् से प्

(ग) क् से ख्  
(ह)

तृ सं घ्

घृ ने क्

त्रि  
दा  
तृ  
गुणम्  
तथा  
पिना  
पु  
नवात्

treis  
—  
—  
(ters omar)  
—  
—  
neptis

tris  
—  
—  
—  
—  
pater  
pecus  
nepos

three थ्री  
tooth टूथ  
thin थिन  
thron थ्रोने  
thirst थर्स्टे  
father फादर  
fee फी  
nephew नेप्यू

thresi  
—  
taurnus  
thairsan  
fader  
nift  
facihu  
(प्रा० उ० ज०)

—drei द्राय  
—  
—  
dorn  
—  
vater (v=f)  
vich  
nelle

द्वितीय वर्ण-परिवर्तन (Second Sound Shifting)—प्रथम परिवर्तन में मूल भाषा के जर्मनिक भाषा भिन्न हुई थी पर इस द्वितीय परिवर्तन में प्रथम भाषा के ही दो क्र—उत्पन्न गया निम्न जर्मन टूट उठे दो भाषा में घट्टर पड़ा। कारण यह है कि जर्मन भाषा के विकास पूर्व निम्न जर्मन वाले (सर्वेज आदि) वहाँ गे हट गए थे। यतः परिवर्तन जर्मन में हुआ और परिणामस्वरूप कुछ ध्वनियाँ भिन्न-भिन्न हो गईं जे—

निम्न जर्मन (सर्वेजो)		उच्च जर्मन
प् वा ड् (३)	= थ्री (three)	द्राय (Drai)
ड् वा ड्	= डीड (Deed)	टाट (tat)
क् वा य्	= योक (yoke)	याच (joch)
ट् का दग् वा स्म	= फुट (foot)	फस्स (fuss)
ग् का फ्	= डीप (Deep)	टोक (tief)
	शीप (sheep)	शाफ (schaf)

उपर्युक्त दोनों वर्ण-परिवर्तन की सहायता से निम्न नियम-तालिका प्रिने बनाई—

मूल भाषा	प्रादिम जर्मनिक	उच्च जर्मन
घ, ध, भ	= ग्, द्, ब्	क्, त्, प्
ग्, द्, ब्	= क्, त्, प्	ख् (ह) घ्, फ्
क्, त्, प्	= ख् (ह), घ्, फ्	ग्, द्, ब्

प्रथम वर्ण-परिवर्तन

द्वितीय वर्ण-परिवर्तन

हम इसको त्रिभुजाकार रूप में इस प्रकार रख सकते हैं—



अगर इस त्रिभुज के किसी कोने से भारोपीय ध्वनियों (मस्कन, ग्रीक, सेटिन) मानकर प्रारम्भ करें तो सकेतित दिशा में जाने से गौंधिक और निम्न जर्मन की ध्वनियाँ प्राप्त होगी जो भारोपीय ध्वनियों का परिवर्तित रूप है। यही प्रथम वर्ण-परिवर्तन है, जैसे १ से २ तथा २ से तीन और ३ से एक एक कोना लाँघने पर अन्य कोने पर हमें उच्च या आधुनिक जर्मनिक ध्वनियाँ मिलेंगी जो भारोपीय से भिन्न होगी। यही द्वितीय वर्ण-परिवर्तन की दशा है। यथा १ से ३ आदि। समझने के लिए भारोपीय क्, घ्, भ् ध्वनियाँ क्, त्, प् उच्च जर्मनिक ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं। अर्थात् उच्च जर्मन का वर्ण-परिवर्तन, निम्न जर्मन ने एक कदम आगे निरूपित दिया में चलना है। त्रिभुज के घीर्ष से हमें वर्ण-परिवर्तन की उचित दिशा प्राप्त होती है।

प्रिय वृत्त नियम-तालिका प्रथम वर्ण-परिवर्तन के लिए अधिनाम रूप में ठीक है पर द्वितीय वर्ण-परिवर्तन के लिए अन्वादों के बाहुल्य के कारण संभव नहीं बही जा सकती है। दोनों वर्ण-परिवर्तन का प्रारम्भिक रूप जो यस्तुन मिलता है इस प्रकार है।

$$X = ch = n$$

भूत भाषा	निम्न जर्मन या आदिम जर्मन	उच्च जर्मन
घ, घ्, भ	= ग, द, ब,	= X, द, λ
ग, द, ब	= ब, न, प,	= X, ब, त्
		(u), Sz, SS, f ४
ब, त, प	= ख (ह), क, फ,	= X, द (इ), ल्, X

प्रश्न २१—प्रासमैन और यर्नर के ग्रिम-नियम-संशोधन पर दृष्टि डालते हुए ध्वनि-नियमों का विवेचन कीजिए। (वि० वि० १६५५)

ग्रिम-नियम में अनेक अपवाद देखे गये। इन अपवादों का प्रधानतः कारण सादृश्य की भावना है। उदाहरणार्थ फादर (Father), मदर (Mother) तथा (Brother) ब्रदर तीनों शब्दों में 'द' (Th) ध्वनि सामान्य रूप से मिलती है। परन्तु जर्मन में इसके रूप फाटर (Fater), मटर (Mutter) तथा ब्रडर (Bruder) मिलते हैं जिनकी ध्वनियों में पर्याप्त अन्तर है परन्तु आधुनिक अंग्रेजी में सादृश्य के कारण एकरूप कर दिये गए हैं। सदृश विदेशी उधार ली हुई ध्वनियाँ भी अपवाद का कारण हैं। जैसे संस्कृत में 'कमेलक' शब्द सेमेटिक भाषाओं से कैमल (Camel) से उधार ली गई है। 'र' और 'क' ध्वनियों का इसमें अन्तर्भूत होने के कारण से यह संस्कृत का शब्द प्रतीत होता है।

ग्रिम महोदय ने स्वयमेव इन अपवादों के आधिक्य को स्वीकार किया है। कुछ अपवाद नियमित हुए हैं, यथा स्क, स्त तथा स्प ध्वनियों में 'स्' ध्वनि ने कई स्थानों में वर्ण-परिवर्तन नहीं होने दिया। क्त (KT) और प्त (PT) में त अपरिवर्तित रहा तथा त्त (TT) गौणिक में थ्ट (Tht) और बाद में स्स् (ss) ध्वनि में बदल गया।

प्रासमैन-नियम—ग्रिम के ध्वनि-नियम के अनुसार क्रमशः क्, त्, प् का ख् (ह्), य्, फ् होना चाहिए परन्तु अपवाद स्वरूप ग्, द्, ब् मिलता है। उदाहरणार्थ ग्रीक किण्वो से अंग्रेजी में हो (Ho), लुप्तोस से थम (Thump) और पियाम में फाडी (Fody) बनना चाहिये पर, गो (go), डम (Dump) तथा बाडी (body) मिलता है। इस अपवाद का समाधान प्रासमैन ने यह नियम बना कर किया कि मूल भारोपीय भाषा में यदि शब्द या धातु के आदि और अन्त दोनों स्थानों पर ध्वनियाँ महाप्राण हों तो संस्कृत और ग्रीक आदि में प्रायः एक ध्वनि मध्यप्राण बन जाती है। जैसे संस्कृत को √ हु (=हवन करना) का मूल रूप, जुहोति, जुहुत, जुह्वति न होकर हुहोति, हुहुतः हुह्वति होना चाहिए। इसी प्रकार √ भृ=डरना से भिभति न होकर 'विभति' रूप बनता है।

इससे यह परिणाम निकलता है कि भारोपीय मूल भाषा की दो अवस्थाएँ रही होगी। पहली अवस्था में दो महाप्राण रहे होंगे दूसरी में केवल एक महा-

प्राण ध्वनि की स्थिति मान्य हो सकती है, यथा—

पूर्वावस्था	उत्तरावस्था
* $\sqrt{\text{भुध से भोषामि}}$	$\sqrt{\text{धुध से बोषामि}}$
घषामि	दधामि
भभार	वभार आदि ।

अपवादस्वरूप जहाँ क्, त्, प् के स्थान पर ग्, द्, ब् मिलते हैं वहाँ प्राचीनकाल में क्, त्, प् का पुराना रूप ए (ह), ए, फ् प्रकट भारोपीय भाषा में ए, ध्, भ् रहा होगा जिसका आगे चलकर ग्, द्, ब् बना होगा । इस कल्पना में वर्ण-परिवर्तन नियमानुकूल हो जाता है तथा जिन रूपों में अपवाद स्वरूप एक पग आगे परिवर्तन हो जाता था, उनका इस नियम से समाधान हो गया ।

बर्नर-नियम—प्रासमैन-नियम के पश्चात् भी कुछ अपवाद रह गये थे । जैसे क्, त्, प् के स्थान में जर्मन भाषाओं में ग्, द्, ब् हो जाता है । उदाहरणार्थ—युवक, दत्तम् का साधारण नियमानुसार यूथ (youth), हन्थ्रेड (hundred) होता चाहिये था परन्तु यंग (young) तथा हन्ड्रेड (hundred) रूप मिलता है । बर्नर ने इन अपवादों पर विचार कर यह निश्चित किया कि प्रिम-नियम स्वरपाठ (accent) पर आधारित था । मूल भाषा के क्, त्, प् के पूर्व यदि स्वरपाठ हो तो प्रिम-नियम के अनुसार परिवर्तन होता है पर यदि स्वरपाठ क्, त्, प् के बाद चले स्वर पर हो तो परिवर्तन एक पग और आगे प्रासमैन नियम की भाँति ग्, द्, ब् हो जाता है । इनमें यदि मूल भारोपीय भाषा के पूर्व स्वरपाठ न होने पर ख्, ठ्, फ् (x, b, f) महाभाषा स्पर्श प्रत्यय बन जाते हैं । जैसे—

गरुड	गॉधिक
सप्प	सिबुन (Sibun)
एनम्	हन्ड (Hunda) — Hundred
युद्धम्	जुग (Juggs) (यही 'गु' प्राचीन क् का प्रतिनिधि है)

हिम के कल्पनानुसार 'ग्' के स्थान पर 'म्' न मिलकर कुछ उदाहरणों में

'र' मिला है। वैसे स्नुषा का Snoru का न मिलाकर Snoru का मिलता है। इसके लिए अनंर ने सहायता को ही कारण माना। 'लृ' के पूर्व सहायता होने पर 'लृ' हो रहता अन्यथा 'रृ' हो जायेगा।

अनंर ने एक दृष्टिकोण रखा कि भारतीय क्, ग्, ण् के पूर्व न् मिला हो (यथा क्, ग्, ण्) तो जर्मनिक में माने पर ध्वनियों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं मिलता। इसी प्रकार त यदि क् या ग् के साथ हो तो कोई परिवर्तन नहीं होगा।

### उदाहरणार्थ—

	भारतीय			जर्मनिक		
	संस्कृत	ग्रीक	लैटिन	गोथी	प्रुशी	डच
क-नक	—	—	piskis	liskis	lish	nsch
क-नक	मास्ति	esta	est	ist	is	ist
	पष्टा	okto	octo	ahtau	—	acht
क-नक	...	—	spicio	—	—	spehon(O H G)
क-नक	नष्टा	—	Neptis	—	—	Nift(O H G)

अनंर के इस उपनिबन्ध (Corollary) के समर्थन के पक्षार्थ भी साक्ष्य के कारण प्रिन्स-नियम में अनेक प्रसिद्ध रह गये हैं।

### अन्य ध्वनि-नियम

तालव्य-नियम (Palatal Law)—कण्ठ्य व्यंजन के तालव्य हो जाने से इसे तालव्य-नियम कहा जाता है। कुछ शब्दों में संस्कृत में क् और ग् के स्थान पर अन्य भाषाओं में क् और ग् मिलते हैं। इस प्रवृत्ति का यह नियम बना कि संस्कृत शब्दों में 'अ' स्वर, ध्वनि की दृष्टि से ग्रीक या लैटिन ओ (O) की तरह है। उसके पूर्व क् या ग् ही व्यंजन पाया जाता है, पर यदि 'अ' स्वर लैटिन या ग्रीक ई (e) की भाँति है तो कण्ठ्य क् या ग् न होकर तालव्य क् और ग् मिलता है। जैसे—एक ही धातु पच् में बने रूप 'पचति' (क् + अ में ओर ग् मिलता है) और 'पक्स्' (क् + अ में ओर ओ (o) की भाँति है) की भाँति है। अतः निष्कर्ष यह है कि किसी काल में संस्कृत में यह देखा जा सकता है। अतः निष्कर्ष यह है कि किसी काल में संस्कृत में 'अ' के स्थान पर 'ई' और 'ओ' स्वर भी थे। अग्रस्वर 'इ' के पूर्व का कण्ठ्य



अन्य भाषाओं में परिवर्तित हो गया और अन्त्यस्थ कृ का वृ जो गृ का वृ हो गया । इस भाषा में छीक, चैटिन आदि की 'ह' और 'छी' ध्वनियों के मूल-स्वर इन के कारण मूल भाषाधीन के मूलक की प्रकृति अतिशय निकट समझा जान गया है ।

छीक-निधम—मूल भाषाधीन प्रकृति में दो स्वरों के मूलक की ग का छीक में 'ह' होकर गृक हो जाता, जैसे—\*Genclos—genclo-h = genclo-h ।

छीटिन निधम—मूलक गृकान्त ग का 'र' हो जाता, जैसे—\*Genclos - genclos ।

पाशो-निधम—मूलक 'ग' का पाशो में हृ मिलना, प्रकृति मूल = हृ, निधम ।

छाव ध्वनि-निधम—छोछूट या मुछूट निधम आदि है ।

प्रश्न २—भाषाधीन परिवार की विशेषताओं और मूलक पर प्रकाश डालते हुए उनके विभाजन का भी परिचय दोगिए । (पृष्ठ १६१)।

भाषाधीन परिवार विश्व का सर्वाधिक लम्ब-प्रतिष्ठ परिवार है । इन परिवार की भाषाएँ विश्व में सबसे अधिक मूलक के द्वारा बोली जाती हैं तथा भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से इसका महत्व है । इस परिवार का उत्तर उत्तरी भाग में मेरु धर्मविषय होता हुआ मूलक आटाई भाग का छोड़कर ब्रिटिश द्वीप पर्यन्त है । इसके साथ ही प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य तथा धर्म की दृष्टि में इस परिवार का महत्व आधिक्य है । भाषा वैज्ञानिक मूलक की दृष्टि में मूलक की वैदिक निधि अन्यतम है । इनके साथ ही प्रायः भी विश्व में इस परिवार की भाषाओं का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है तथा वे अन्य भाषाओं की भाषाएँ मानी जाती हैं । अंगरेजी, फ्रेंच, रूसी, स्पेनिश तथा हिन्दी प्रायः अन्तर्राष्ट्रीय स्थाति प्राप्त कर चुकी हैं ।

सामकरण—इस परिवार के अनेक नाम हैं । सर्वप्रथम इसे भारत-जर्मनी "इण्डो-जर्मनिक" नाम दिया गया था क्योंकि इसकी सीमा भारत से जर्मनी तक आती गई परन्तु बेरटो सासा की भाषाओं की दृष्टि से यह नाम उपयुक्त न समझा गया । मैक्समूलर का धार्य परिवार तथा अन्य नाम इण्डो-केल्टिक और जेकेलिक भी सर्वमान्य न हो सके । भौगोलिक दृष्टि से इण्डो-केल्टिक नाम

‘र’ मिला है। जैसे स्नुषा का Snosu रूप न मिलकर Snoru रूप मिलता है। इसके लिए वनर ने स्वराघात को ही कारण माना। ‘स्’ के पूर्व स्वराघात होने पर ‘स्’ ही रहेगा अन्यथा ‘र’ हो जायेगा।

वनर ने एक दृष्टिकोण रखा कि भारोपीय क्, त्, प् के पूर्व स् मिला हो (यथा स्क, स्त, स्प) तो जर्मनिक में माने पर ध्वनियों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं मिलता। इसी प्रकार त यदि क् या प् के साथ हो तो कोई परिवर्तन नहीं होता।

उदाहरणार्थ—

	भारोपीय			जर्मनिक		
	संस्कृत	ग्रीक	लैटिन	गाथी	अंग्रेजी	उच्च जर्मन
स्क-स्क	—	—	piskis	hskis	fish	fisch
स्त-स्त	मास्ति	esti	est	ist	is	ist
	अष्टा	okto	octo	ahtau	—	acht
स्प-स्प	—	—	spicio	—	—	spehon(O H G)
प्ल-प्ल	नप्ता	—	Neptis	—	—	Nift (O H.G.)

वनर के इस उपनियम (Corollary) के सशोधन के पश्चात् भी सादर के कारण ग्रिम-नियम में अनेक अपवाद रह गये हैं।

३—जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उनके स्वतंत्र अर्थ का पता नहीं है। परन्तु यह अनुमान है कि वे भारोपीय प्रत्यय भी स्वतंत्र शब्द थे तथा अन्य भाषाओं के प्रत्ययों की भाँति उनका भी अर्थ था, कालान्तर में धीरे-धीरे ध्वनि-परिवर्तन के चक्र में पड़ने से उनका प्राधुनिक रूप मात्र शेष रह गया है।

४—पूर्व-सर्ग या पूर्व-विभाषिकों का प्रयोग बान्टू परिवार की भाँति सम्बन्ध सूचक या वाक्य-रचना के लिए नहीं होता है। भारोपीय कुल में इनका अधिकता से प्रयोग शब्द तथा क्रिया के अर्थ को बदलने में किया जाता है यथा—आहार, बिहार तथा परिहार में 'प्रा', 'वि' तथा 'परि' पूर्वसर्ग या उपसर्ग हैं तथा इनकी मूल प्रकृति समास की तरह होती है और इनको धातु या शब्द से पृथक् किया तथा छोड़ा जा सकता है।

५—भारोपीय-परिवार की प्रमुख विशेषता समास-रचना की विशेष शक्ति है। समास बनाते समय विभक्तियों का लोप हो जाता है। समस्त पद के अर्थ तथा उन शब्दों के स्थान पर रखने में (जिनसे समास बना है) सभावित अर्थ में महान् अन्तर होता है। समस्त पद में एक नया अर्थ निकलने लगता है। वास्तव में भारोपीय समास जो हम अद्वैत अवस्था में अभिव्यक्त वाक्य-खण्ड के रूप में ले सकते हैं। वेद भाषा का समस्त शब्द बहुत बड़ा तथा लम्बा होता है। इसी प्रकार संस्कृत में भी यही दृश्य है।

६—आध्वनि या घर्जनावस्था (Vowel gradation) इस परिवार की एक विशेषता है। इसमें स्वर-परिवर्तन में प्रत्यय या सङ्ग-प्रत्यय मध्य-श्रेणी परिवर्तन हो जाता है। संस्कृत आरम्भ में किसी शब्द में विशिष्ट स्थान पर स्वगदात्त के कारण स्वर-परिवर्तन में धीरे धीरे प्रत्ययों का लोप हो गया था। सम्बन्धित परिवर्तन, स्वर परिवर्तन के द्वारा स्पष्ट होने लगा। इन प्रत्ययों का दमन धर्मजी की बड़ी विद्याओं में स्पष्ट रूप में मिलता है।  
—drank, drank, drunk में। यहाँ (i), (u) तथा (u) में स्वर-परिवर्तन।  
से उनमें (i) सम्बन्धी परिवर्तन हो गया है। दमन स्वरधातु के परिवर्तन।  
ध्वनि में ही स्पष्ट होता है।

७—समास-भारोपीय परिवार में द्वन्द्व-रूपों का प्राचिन है। द्वन्द्व एक-  
आवधारण पूर्व था। वह निकलने पर विभिन्न भाषाओं का स्वतन्त्र रूप में

उचित ही है क्योंकि सीमा के दोनों भागों पर भारतीय तथा कैल्तिक भाषाएँ हैं। जैस्पर्सन 'आर्य' नाम को अधिक गौरव प्रदान करते हैं। परन्तु फ्रांस और इंग्लैण्ड के विद्वानों ने इस परिवार का नाम इन्डो-यूरोपीयन या भारत-यूरोपीय पसन्द किया। महाद्वीप की दृष्टि से यह नाम ठीक है। भारत-यूरोपीय का संक्षिप्त रूप 'भारोपीय-परिवार' भारत तथा यूरोपीयन देशों में प्रचलित हुआ है। भाषा-वैज्ञानिक भी इस नाम को तत्त्वपूर्ण मानते हैं। यहाँ तक प्राचीन सभ्यता, संस्कृति तथा साहित्य की दृष्टि से यह परिवार विश्व के सर्वाधिक गौरवमय तथा समृद्ध है। इस परिवार की भाषाओं का योशुन अनुशीलन पर्याप्त माया में हुआ है।

भारोपीय-परिवार की मुख्य विशेषताएँ—

(१) यह परिवार द्विलिङ्ग-योगात्मक है। प्रारम्भ में इस परिवार की भाषा द्विलिङ्ग-योगात्मक थी पर विकसित होकर एक लिंग की छोड़ कर प्रायः सभी भाषाएँ द्विलिङ्ग-योगात्मक हो रही हैं। सर्वप्रथम प्रत्यय शब्द का एक भग या तथा धातु के उभरा अभिन्न योग रहता था। कालान्तर में ध्वनियों में विभाग के कारण प्रत्यय नष्ट होकर लुप्त हो गये और उनके स्थान पर परसर्ग तथा एहान्त विभक्ति आदि का महत्व बढ़ गया। इन विभक्तियों के परिणामस्वरूप अब भाषाएँ सर्वयोगात्मक और विभक्ति प्रधान रूप में द्विलिङ्ग-योगात्मक तथा स्थान प्रधान हो गई हैं। जैसे 'राम मोहन को पीटा है' या 'राम मोहन मोहन के पासीरक स्थान, परिवर्तन में अपने परिवर्तित हो जाता है। यह वृत्ति अपने ही, ईसा के १५०० ई. में अधिक प्रचलित हुई है, मनुष्य आदि प्राणी भाषाभाषी यह बात

३—जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उनके स्वतन्त्र अर्थ का पता नहीं है। परन्तु यह अनुमान है कि ये भारोपीय प्रत्यय भी स्वतन्त्र शब्द थे तथा अन्य भाषाओं के प्रत्ययों की भाँति उनका भी अर्थ था, कालान्तर में धीरे-धीरे ध्वनि-परिवर्तन के चक्र में पड़ने से उनका प्राधुनिक रूप मात्र शेष रह गया है।

४—पूर्व-सर्ग या पूर्व-विभक्तियों का प्रयोग बान्टू परिवार की भाँति सम्बन्ध सूचक या वाक्य-रचना के लिए नहीं होता है। भारोपीय कुल में इनका अधिकता से प्रयोग शब्द तथा क्रिया के अर्थ को बदलने में किया जाता है यथा—आहार, विहार तथा परिहार में 'आ', 'वि' तथा 'परि' पूर्वसर्ग या उपसर्ग हैं तथा इनकी मूल प्रकृति समास की तरह होती है और इनकी धातु या शब्द से पृथक् क्रिया तथा छोड़ा जा सकता है।

५—भारोपीय-परिवार की प्रमुख विशेषता समास-रचना की विशेष शक्ति है। समास बनाने समय विभक्तियों का लोप हो जाता है। समस्त पद के अर्थ तथा उन शब्दों के स्थान पर रखने से (जिनने समास बना है) सम्भावित अर्थ में महान् अन्तर होता है। समस्त पद में एक नया अर्थ निकलने लगता है। याम्यत्र में भारोपीय समास की हम व्यवहृत अवस्था में अनिवार्य वाक्य-खण्ड के रूप में ले सकते हैं। वेल्ड भाषा का समस्त शब्द बहुत बड़ा तथा लम्बा होता है। इसी प्रकार मरहून में भी यही दशा है।

६—धपध्रुति या धतव्यवस्था (Vowel gradation) हम परिवार की एक विशेषता है। इसमें स्वर-परिवर्तन में प्रत्यय या सम्बन्ध तत्त्व सम्बन्धी परिवर्तन हो जाता है। समस्त धातुओं में किसी शब्द में विविध स्थान पर स्वरगणन के कारण स्वर-परिवर्तन में धीरे-धीरे प्रत्ययों का लोप हो गया था सम्बन्धित परिवर्तन, स्वर परिवर्तन के द्वारा स्पष्ट होते लगे। हम यहाँ का दृष्टान्त अंग्रेजी की कभी विद्याओं में स्पष्ट रूप में मिलता है—  
—drink, drank, drunk में। यहाँ (i), (a) तथा (u) में स्वर परिवर्तन से स्पष्ट रूप से सम्बन्धित परिवर्तन हो गया है। इसमें स्वरगणन के परिवर्तन में भी परिवर्तन हुआ है।

७—समस्त भारोपीय परिवार में द्वयस्वरा का प्रादुर्भाव है। द्वयस्वरा का प्रादुर्भाव एक शब्द से निकलने पर मिलित शब्दों का स्वरगणन से स्वर



मैक्स तथा प्रिटेनिक की वेल्ल, बाल्टिक और ब्रिटन भाषाएँ हैं।

**द्यूटोनिक**—यह भारोपीय परिवार की महत्वपूर्ण शाखा है। इनकी भाषाएँ जर्मनी, स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क, इंग्लैंड आदि में बोली जाती हैं। इस की तीन उपशाखाएँ हैं—१. पूर्वी जर्मन २. उत्तरी जर्मन ३. पश्चिमी जर्मन। पश्चिमी जर्मन उपशाखा का साहित्य तथा प्रचार की दृष्टि से बड़ा महत्व है। इस वर्ग की जर्मन भाषा तथा फ्रेंच ने साहित्य समृद्धि के कारण अन्तर्गोष्ठीय स्थाति प्राप्त कर ली है। 'प्रिम-नियम' का वर्ण-परिवर्तन पश्चिमी जर्मनी की उच्च तथा निम्न जर्मन भाषा पर आधुन है। ये भाषाएँ प्राचीन काल से ही सहित से व्यवहृत की ओर बढ़ रही हैं।

**लैटिन या इतालिक**—इस शाखा की प्रमुख भाषा लैटिन है। यह रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय की धार्मिक भाषा है। कैल्टिक के समान इसके भी दो वर्ग 'प' और 'क' हैं। पहले को लैटिन तथा दूसरे को एम्ब्रो-मेमेनटिक कहते हैं। आन्ध्रोपीय के अध्येता के लिए लैटिन का महत्व भी सस्कृत और ग्रीक के समान ही है। इसी से रोमान्टिक फ्रेंच, स्पेनिश, पुर्तगाली, इतालियन तथा रूमानियन भाषाओं का विकास हुआ है।

**हेबेनिक**—वैदिक सस्कृत के बाद इस परिवार की भाषाओं का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य ग्रीक भाषा में होमर की इलियड तथा ओडेसी महाकाव्यों में गुराहित है जो ई० पू० ८५० का कहा जाता है। यह लैटिन के समान मध्य तथा बिद्वान् समाज की भाषा रही है। ग्रीक भाषा तथा वैदिक सस्कृत में अत्यधिक साम्य है। दोनों में ही सगीतात्मक स्वरापाठ प्रधान था तथा बाद में दोनों बलात्मक स्वरापाठ की ओर प्रवृत्त हुईं। सस्कृत में सज्ञा, सर्वनाम तथा ग्रीक में क्रिया और अव्यय के रूपों की अधिकता है। ग्रीक में स्वरी तथा सस्कृत में व्यञ्जनों की अपेक्षाकृत अधिकता है।

विशाल टुप्पा और भाषाएँ समूह व विभिन्न रूप में भाषाओं का उद्गार  
में पुनर्, इन तथ्य का प्रयोग टुप्पा है। प्रायः सभी देशों का  
है। भाषा में सभी प्रकार के भाषाओं के लिए विभिन्नताओं का प्रयोग  
होता है।

विभाजन

भारतीय विचार में कतिपय भाषाएँ ऐसी हैं, जिनमें उन स्थान पर  
भाषा जाता है जहाँ भाषा में 'य' तथा अन्य कई योरोपीय भाषाओं में  
भाषा जाता है। भारतीय भाषाओं में भारत-यूरोपीय भाषाओं में, य  
प्रमुख भाषाओं में उन को रखा गया है, पर भारत-ईरानी भाषा, प्रत्येक  
भाषाओं में 'य' और 'य' के स्थान पर, य, य, य का रूप में लेती है। य  
भाषाओं में १५०० में प्रकाश किया। इसके यह अनुमानित है कि प्रायः  
भारतीय भाषाओं में योरोपीय भाषाओं में 'य' होनी, एक समीपवर्ती भारत, ईरान  
भाषाओं में, य और 'य' में बोली जाती है। अन्य दूरवर्ती भाषाओं में  
इन ध्वनियों का विकास व होने से वे कठोर रूप में स्पर्श हो गयी हैं। इसी  
भाषा पर जानबूझकर वे इन समस्त भाषाओं को दो वर्गों में बाँटा है—

प्रथम तथा केन्तुम्—इन दोनों शब्दों का अर्थ 'य' है। एक में 'क' ध्वनि  
पाई जाती है, दूसरे में 'य'।

स्पष्टार्थ - अवेस्ता—गतम्, फारसी—सद

संस्कृत—गतम्, हिन्दी—यौ, रूसी—रतो, बल्गेरियन—मुतो, लिथुआनियन  
—रिजस्तास, लैटिन—केन्तुम्, ग्रीक—हेक्टोन इटैलियन—केन्तो, फ्रेंच—केन्त  
ग्रीक—कैन्ट, गेलिक—क्युड, तोलारी—कन्ध।

केन्तुम् वर्ग

इस वर्ग में छः शाखाएँ हैं—१. कैल्टिक, २. द्यूटोनिक (जर्मनिक), ३.  
लैटिन (इटैली), ४. हेलैनिक (ग्रीक), ५. हिट्टाइट (हिती), ६. तोलारी।

कैल्टिक—इस शाखा की भाषाएँ यूरोप के दक्षिणी भाग में बोली जाती  
हैं। लैटिन शाखा से इनका रूप-सम्बन्ध है। इसके ध्वनि-भेद से 'क' और 'य' दो  
वर्ग हैं। जैसे वेल्स 'पम्प' (पान) का आइरिश में 'कोइक' है। 'य' वर्ग को  
ब्रिटेनिश 'य' कहते हैं। गायलिक को आइरिश 'य' कहते हैं।





तोला—यह पूर्वाग्रह गुणितान के गुणान्तरण से माना है। जो कि  
 लिए इस 'का' या 'र' के समान भिन्न में यह भाग के अनुपलब्ध है।  
 इस के प्राचीन (का, र, य, ल, व, श, ष, ण, त्रि) विभिन्न रूप प्राप्त हुए हैं। इन रूपों  
 पर्याप्त का गणित के कारण प्राच्यिक प्रभाव है। इसने स्वयं की प्रतिष्ठा  
 कम है। यदि भिन्न तथा विभिन्नता समान के माना है। यह-भाषाओं की  
 समान के निरूप है। यथा वि. का पाषाण, मा. का माण्ड, धा. का धोक।  
 शतम् यम्

इस वर्ग की भाषाओं के चार उपकुल हैं—१. मल्लोन्नत, २. बाल्तिस्त-  
 विक, ३. धार्मोनियन तथा ४. धार्य या भारत-ईरानी।

मल्लोन्नत या इलोन्नियन—यह शाखा कारिन्धियन की साड़ी से इटली के  
 दक्षिणी पूर्वी भाग तक फैली थी। उसमें सिनालेसो के प्रतिरिक्त कई की  
 साहित्यिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। इसके प्राचीन कालिक तथा माध्य  
 कालिक रूपों का कोई भी अवशेष प्राप्त नहीं है।

बाल्तिस्त-विक या लेटो-स्तविक—इस शाखा में बाल्टिक तथा स्ला-  
 वोनिक युक्त उपशाखाओं का अस्तित्व है। बाल्टिक शाखा की प्राचीनतम  
 प्रकृति का पता नहीं लगता है। मध्यकाल में इसकी तीन शाखाएँ हैं—लिथु-  
 भानियन, लेटिस तथा प्रशियन। प्राचीन प्रशियन संभवतः जर्मन के प्रभाव से  
 नष्ट हो गई है। दोष दोनों भाषाएँ रूस और पश्चिमी भागों में बोली जाती  
 हैं। स्लाविक उपशाखा की भाषाएँ मल्लोरिया, जंकोस्लेवाकिया, पोलैंड,  
 यूगोस्लाविया, यूक्रेन तथा रूस में बोली जाती हैं। यदि भारतीय ध्वनि  
 इस शाखा में सुरक्षित है।

धार्मोनियन—धार्म वर्ग के पश्चिम में इस शाखा की भाषाएँ स्थित हैं।  
 इसमें ईरानी, तुर्की तथा फारसी शब्द वर्णित भाषा में मिलते हैं। योरुप तथा  
 एशिया की सीमा पर बोली जाने वाली कीजियन इसी के अन्तर्गत है। इस  
 भाषा का नवीन रूप प्राचीन रूप से सर्वथा भिन्न है तथा प्राचीन रूप अब भी  
 धार्मिक कार्यों में प्रयुक्त होता है इस शाखा पर धार्य तथा धनार्थ दोनों  
 भाषाओं का प्रभाव है।

भारत-ईरानी तथा धार्य शाखा—भारतीय-परिवार की धार्य-शाखा का

महत्व अनुलनीय है। भाषों का एक समूह ईरान की ओर बढ़ा तथा कुछ भाषों ने भारत में प्रवेश किया। अतः इसको भारत-ईरान की शाखा भी कहने हैं। इस शाखा के तीन उन्मुख हैं—(१) भारतीय, (२) दरद तथा (३) ईरानी। भारतीय भाषा शाखा की प्राचीनतम भाषा संस्कृत है, तथा प्राचीन साहित्य जो वैदिक मंत्रों के रूप में उपलब्ध है—यह परिवार प्राचीनतम साहित्यिक निधि है। यह वैदिक साहित्य षेड-दो हजार ईसा पूर्व का है। भारतीय भाषा शाखा की परवर्ती भाषाएँ प्राकृत तथा अपभ्रंश की स्थिति को पार करती हुई आज की भारतीय भाषा भाषाओं के रूप में विकसित हुई हैं। अतः इनके तीन विभाग किये गये हैं—प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक काल। ईरानी उपशाखा के अन्तर्गत पारसियों की प्राचीन भाषा अवेस्ता मिलती है और यह ऋग्वेदिक मंत्रों से मिलती-जुलती है। इसकी प्राचीनतम भाषा ईसा से लगभग ८०० वर्ष पूर्व की कही जाती है। दरद भाषाओं का क्षेत्र पामीर तथा पश्चिमोत्तर पंजाब है। पश्तो की तरह वाक्य-गठन की दृष्टि से दरद का स्थान ईरानी तथा भारतीय भाषाओं के मध्य है। यदि पश्तो का झुकाव ईरानी की ओर है तो दरद का भारतीय भाषाओं की ओर। दरद उपवर्ग की तीन भाषाएँ हैं—खोशार, वाकिर और दरद। अवेस्ता के प्रतिरिक्त ईरानी का प्राचीन रूप अहेमनिद राजाओं के ५२१ ई० पू० बूनिफोर्म शिलालेखों में प्राप्त होते हैं। परवर्ती भाषा पहलवी तथा प्रमुख आधुनिक फारसी हैं।

प्रश्न २३—भारतीय भाषा-भाषाओं पर अन्य भाषाओं का क्या प्रभाव पड़ा है? इसको स्पष्ट करते हुए बताइए कि भारत में किन परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं।

भारतवर्ष एक बड़ा तथा विस्तृत देश है तथा इस दृष्टि से इनकी उपमहा-द्वीप भी कहा जा सकता है। इसमें अनेक परिवार की भाषा तथा बोलियाँ बोली जाती हैं। इस का मात्र कारण अनेक जाति तथा देशवासियों का इन देश में सरा जाना है। भारतीय भाषाएँ तो इसी स्थान की असमूल्य सम्पत्ति हैं। इनके प्रतिरिक्त अन्तर्देशीय भाषाओं में इन्डो-यूरोपीय भाषाएँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं तथा प्रायः समस्त दक्षिण भारत में इनकी व्यापक स्थिति है। अन्य भारतीय भाषाएँ मलयालम, असम्य आदिवासियों या



विस्तार है और इसका एक लघु खंड सिमला पर्वत-श्रेणी तक व्याप्त है। इसे कनावरी भाषा कहते हैं। साबर भाषा साबरो (जंगली चिकारिया) की भाषा है। अन्य महत्वपूर्ण भाषाएँ मतानी (बिहार, उड़ीसा वंगाल, धामाम), मुण्डारी, बिहार में रांची के पास तथा अन्यत्र तथा हो (मिज़ोरम जिले में) है। मोनह्मेर में मोन एक परिभाषित तथा साहित्य-मग्न भाषा थी, परन्तु अब यह द्याम, बर्मा तथा भारत के जंगली तथा आदिवासियों द्वारा बोली जाती है। इन भाषाओं के मानवी में ग्यारहवीं शती के शिलालेख मिलते हैं। निबोदार द्वीप की भाषा इसी जाति की है। भारत में इनमें सम्मिश्रित भाषा धामाम प्रान्त में 'सासी' है। अब इस भाषा का रूप विकसित होकर भिन्न हो गया है।

भारतीय आर्य-भाषाओं पर मुण्डा-भाषाओं का प्रभाव—मुण्डा भाषा में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिन में भारतीय आर्य-भाषाएँ प्रभावित हुई हैं। मुण्डा के प्रभाव के कारण हो बिहार में त्रिश रूपों की अवधिक जटिलता है। मुण्डा की एक विशेषता दुहरे बहुवचन का उत्तम पुरुष सर्वनाम प्रयोग है। इनके एक प्रकार में आध्यम पुरुष को सम्मिलित कर लिया जाता है तथा दूसरे रूप में नहीं। उदाहरणार्थ—गुजराती में 'आपणे गया हुआ' का अर्थ 'हम (और तुम) गये थे' तथा 'आमे गया हुआ' का अर्थ 'हम गये थे' मिलता है जो मुण्डा का प्रभाव है। अनेक अणनाकाचक संज्ञाओं में भी मुण्डा का प्रभाव पड़ा है। 'कोरी' या 'कोला' आदि भाषा में मुण्डा शब्द कृड़ा से आया है।

२. एकाग्र परिवार—इस विभाग-धीनी परिवार भी बहुत है। धीनी भाषा का प्रयोग भारत में नहीं होता परन्तु निम्बन-बर्मी प्रदेश का प्रयोग उत्तर भारत में पर्वतीय प्रदेशों में होता है। इसकी तीन शाखाएँ हैं—निम्बन हिमालयी, अमर लो तथा अमर-बर्मी। निम्बन-हिमालयी शाखा में निम्बन की मुख्य भाषाएँ और बाँरवी तथा हिमालय के उत्तरी क्षेत्रों की छोटी-छोटी बाँरवी पाई जाती हैं। अरुण तथा बरनोर में इनकी प्रकार की बंजिरी है। अमर-बर्मी शाखा में बर्मी तथा अमरों के क्षेत्रों की छोटी-छोटी भाषाएँ मिलती हैं। जैसे मुण्डा बर्मी (उन्मुन आकाश में रहता है, यन्त्र प्रक (पुरुष का प्रभाव)। अमर-बर्मी शाखा के उत्तरी भाग में बर्मी बोली जाती है। न भाषा की बड़ी संख्या मिलती है और इनमें से कुछ से सम्बन्धित है।



भारत में कोकणी भाषा भी इसी का रूप है। इन परिवार की भारत में प्रचलित भाषाएँ तीन हैं—ईरानी, द्रविड़ और भारतीय। ईरानी भाषा का फारसी रूप अब भी साहित्यिक स्तरों में प्रयुक्त होता है। उर्दू और लडो बोली में भी इसके अनेक शब्द हैं। पर यह बोली नहीं जाती है। द्रविड़ भाषा को पिशाच या पैशाची भी कहा गया है। भारत में अब इसका प्रभाव महेंद्रा, मिन्नी, राजाजी और मुद्दूर कोकणी मराठी पर भी स्पष्ट लक्षण होता है। 'काश्मीरी' भाषा का विकास पैशाची अवस्था से माना जाता है। पर इस पर संस्कृत का स्पष्ट प्रभाव है।

भारतीय भाषाओं का सर्वाधिक आधिपत्य उत्तरी भारत में है। इसका साहित्य भाषा-विज्ञान की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वैदिक संस्कृत से हिंदी पर्यन्त इसका विकास अधुण्य चला आ रहा है जो इन भाषाओं की महानता का सूचक है। प्रियदर्शन का विभाजन आर्य-भाषाओं पर आधारित है। हिंदी का क्षेत्र बहुत व्यापक है तथा राष्ट्र-भाषा के कारण अन्य प्रांतीय भाषाओं पर इसका प्रभाव है। प्रायः परिवार का प्राचीनतम प्रायोगिक साहित्य इसी शाखा में उपलब्ध है जो भाषा-विज्ञान के लिए एक महत्वपूर्ण सामग्री का कार्य करता है। जो तो हिन्दी की बोलियों में अवधी, प्रोच, पुनगानी, धरवी आदि के शब्द भी घुलमिल गये हैं। इन दृष्टि में इनका प्रभाव दायीय है।

५. विविध या अनिश्चित समुदाय—इसमें कुछ भारत में बोली जाने वाली वे भाषाएँ आती हैं जिनको किसी वर्ग या परिवार में रखना या रूप के आध्यात्मिक सम्बन्ध के कारण नहीं रखा जा सका है। गुमेरी भाषा का सम्बन्ध कुछ विद्वानों ने द्रविड़ और मोन्गोलोइडों की समष्टि में स्थापित किया है। दो भाषाओं का क्षेत्र भारत में है जिनमें एक घटती है। यह घटती हीर की भाषा है। दूसरी 'बुरजारी' या यजुता है। दूसरा क्षेत्र पाश्चात्य के उत्तरी पूर्वी कोने पर है। द्रविड़ या दार्ष्टिक से इसका सम्बन्ध सूत्र स्थापित करने का प्रयास निष्फल हुआ है।

प्रश्न २८—मूल (आदिम) भारतीय भाषा की संस्कृत भाषा के साथ तुलना करने हुए उसकी प्रारम्भिकता, अनिश्चित और उदासीन स्वर (Neutral vowel) की स्थिति पर प्रकाश डालिए।







भारतीय परिवार की समस्त शाखाओं में कुछ ऐसी निकट समानताएँ हैं, जिनके कारण इन्हें एक परिवार में सम्मिलित किया जाता है। उदाहरणार्थ—

संस्कृत    ग्रीक    लैटिन    जर्मन    स्पेनी    स्लावोनिक भाषाएँ

१. पित्रु (पितर), पतेर, (pater), पतेर, वातेर (vater), फादर (father)
२. भयानि, फेरो (Phero), फेरो (fero) — बौयर (Bear), बेरिन (beran),
३. लूकान, लूकोउव (lukous lukons) लुपोस (lupos) वुल्फम (wulfs)

वल्फोन्स (wulvongs)

काङ्क्ष्य में प्रयोग रामायण-काल । लेकर भुगत-काल तक रहा । इस भाषा के अगणित शब्द समीपवर्ती देशों के भाषा, तिब्बती, चीनी, जापानी आदि में सुनिहित हो गये । संस्कृत का साहित्य विद्वद् के सर्वाधिक नम्रम्न साहित्यों में से एक है । इसने अनेक भाषाओं को अनेक दृष्टियों से प्रभावित किया है ।

संस्कृत और अवैस्ता में साम्य-धार्म-भाषाओं में एक प्रकार से अनुकूलता तथा व्याकरण की दृष्टि में अत्यन्त सान्निध्य की भावना मिलती है, जो इसे अन्य भाषाओं से पृथक् करती है । दोनों भाषाओं का तुलनात्मक साम्य निम्न दृष्टि बिन्दुओं में देखा जा सकता है ।

(१) ध्वन्यात्मकता की दृष्टि से धार्म भाषा की इन दोनों भाषाओं— संस्कृत और अवैस्ता में प्राचीन भारोपीय ऐ, ओ, अ का भेद नहीं रहा है । समस्त भारोपीय मूल स्वर ॐ, ॐ, ॐ ओर ॐ (ह्रस्व या दीर्घ) धार्म-भाषाओं में 'अ' (ह्रस्व या दीर्घ) संस्कृत अ या आ हो जाते हैं, परन्तु ग्रीक आदि में इनका भेद बना रहा है । उदाहरणार्थ—

भारोपीय	संस्कृत अवैस्ता	ग्रीक	लैटिन
● नेभास (ne'bhos), नभस, नबह	नेफोस (nephos), नेबुना (nebula)		
● ओस (osib), अस्ति, अस्ति (ast), ओस्तेमोन (oste'on), os			
● एपो (apo), आपम्, अस्ति	एपो (apo)		
● ऐक्वोस (ekwos) अस्ति, अस्ति (aspo), हेप्पोस (heppos), ऐक्वम् (epuus)			

(२) भारोपीय उदासीन स्वर अ (स्व a) दोनों भाषाओं में 'इ' हो जाता है । परन्तु यह विचार अधिकतर ग्रीक ध्वनि दीर्घ स्वर ए, ओ, आ के अपभ्रुति अनेक रूप में धार्म वर्ण में 'अ' के स्थान में 'इ' हो जाता है । उदा—

भारोपीय	स०	अ०	दी०	ल०
पेट (pate) पिता	पिता	पितर (pater)	पितर	
पेट (dhe) धातु से दित	पेटोस् (thetos)			

(३) संस्कृत, अवैस्ता में 'र' (ॠ) ओर 'ल' (ॡ) मूल भारोपीय ध्वनि की अतिवृद्धि हो जाती है । भारोपीय भाषा में इन दोनों में अधिक भेद नहीं था



शाङ्गमय में प्रयोग रामायण-काल । लेकर मुगल-काल तक रहा । इस भाषा के अगणित शब्द समीपवर्ती देगो के भाषा, तिब्बती, चीनी, जापानी आदि में प्रसिद्धि हो गये । संस्कृत का साहित्य विश्व के सर्वाधिक सम्पन्न साहित्यों में से एक है । इसने अनेक भाषाओं को अनेक दृष्टियों से प्रभावित किया है ।

संस्कृत और अवस्था में साम्य--आर्य-भाषाओं में एक प्रकार में अनुसूचना तथा व्याकरण की दृष्टि से अत्यन्त सान्निध्य की भावना मिलती है, जो इसे अन्य भाषाओं से पृथक् करती है । दोनों भाषाओं का तुलनात्मक साम्य निम्न दृष्टि बिन्दुओं में देखा जा सकता है ।

(१) ध्वन्यात्मकता की दृष्टि से आर्य भाषा की इन दोनों भाषाओं—संस्कृत और अवस्था में प्राचीन भारोपीय ऐ, ओ, अ का भेद नहीं रहा है । समस्त भारोपीय मूल स्वर ॐ अ, ॐ ऐ और ॐ ओ (ह्रस्व या दीर्घ) आर्य-भाषाओं में 'अ' (ह्रस्व या दीर्घ) संस्कृत अ या आ हो जाने है, परन्तु ग्रीक आदि में इनका भेद बना रहा है । उदाहरणार्थ—

भारोपीय	संस्कृत अवस्था	ग्रीक	लेटिन
● नेभास (ne'bhos), नभस, नबह	नेफोस (nephos), नेबूला (nebula)		
● ओस्थ (osth),	अस्थि, अस्त (ast), ओस्तेयोन (oste'on), os		
● एपो (apo),	आपम्, अप	एपो (apo)	—
● ऐक्वोस (ekwos)	अस्व, अस्त्रो (aspo), हेप्पोस (heppos), ऐक्वम् (epuus)		

(२) भारोपीय उदासीन स्वर अ (या a) दोनों भाषाओं में 'इ' हो जाता है । परन्तु यह बिचार अधिकतर ग्रीक ध्वनि दीर्घ स्वर ए, ओ, आ के अपव्युति जनक रूप में आर्य वर्णों में 'अ' के स्थान में 'इ' हो जाता है । यथा—

भारोपीय	स०	अ०	ग्री०	ले०
पेटे (pate)	पिता	पिता	पातेर (pater)	पैटर
पेटे (pate)	पिता	पिता	पेटोम् (pater)	पैटर

(३) संस्कृत, अवस्था में 'र' (ऋ) और 'ल' (ऌ) मूल भारोपीय ध्वनियों परिलक्षित हो जाती है । भारोपीय भाषा में इन दोनों में अधिक भेद नहीं था









और परे इ, ए स्वर के होने पर व्, छ्, ज्, झ् हो गये ।

(६) सस्कृत तथा अवेस्ता में समान रूप तथा समानार्थी अनेक शब्द हैं जैसे सस्कृत योजस् का अवेस्ता में योजः, अनु-धन्व, का अनुमन्व ददामि का ददामि आदि ।

(१०) दोनों भाषाओं की रूप-रचना तथा संघटना इतनी समान है कि अवेस्ता की गाथा की भाषा को कतिपय ध्वनि नियम सम्बन्धी परिवर्तनों के आधार पर वैदिक सस्कृत के रूप में बदला जा सकता है । उदाहरणार्थ—

अवेस्ता = सस्कृत

मूर दामोह दविस्तम् = मूरं धामसु दविष्टम् । आदि ।

सस्कृत तथा अवेस्ता में अन्तर—दोनों के कुछ रूपों में अन्तर भी है ।

(१) सस्कृत में टवर्ग है जबकि अवेस्ता में नहीं है ।

(२) भारतीय में चवर्ग (व्, छ्, ज्, झ्, ञ्) ध्वनियाँ हैं, जबकि ईरानी में केवल व् तथा ज् हैं ।

(३) पाचो वर्गों के द्वितीय और अनुर्थ महाप्राण वर्ण अवेस्ता में नहीं हैं ।

(४) अवेस्ता में 'लृ' के स्थान पर 'र' ध्वनि है जैसे धील = गीरो ।

(५) ईरानी में खरो वा बाहुल्य है । भारतीय 'म' 'मा' की जगह उसमें धाठ खर हैं ।

(६) सस्कृत वा अवेस्ता में घर्, र् या घ है । जैसे, वृक्षम् = वरेक्षम्, धेष्ट = घराष्ट ।

(७) सस्कृत षोडशप्राण व्, थ्, भ् ईरानी में अल्पप्राण व्, थ्, ब् प्राण होते हैं । यथा—

भूमि = बुमि (bumi), धेनु = देनु (denu), घर्म = गर्म (garm),

(८) सस्कृत के अषोडशप्राण व्, लृ, वृ तथा अषोडशप्राण व्, थ्, फ् ईरानी में माध्य या सघर्षी व्, थ्, फ् हो गये हैं । जैसे—बन्वा = बन्वा (bawwa), खल्ल = खल्लम् (xallam), गे. व. — हरेखो, र्ख — खल (xal) यथा — खा (xaxa), गरा = हरा (harax)

(९) अरब खगोल और अग्निहिता की अवेस्ता में सस्कृत की धर्, र् अतिर है—



प्रश्न २६—वाक्य क्या है? प्राकृत, पालि की भाषागत बिभेदनाएँ बताइये और इनका सम्बन्ध संस्कृत तथा आधुनिक भारतीय धर्म-भाषाओं से निर्धारित कीजिये।

## ਬੰਧਨਾ

‘सकृत् प्राकृत भाषाओं की जननी है’ इस कथन का युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

पानि तथा प्राकृत दोनों ही भारतीय भाषाओं का उद्भव वैदिक सभ्यता के पश्चात् होता है। सर्वप्रथम हम पानि के विषय में विवेचन करते हैं। मध्यम आर्य-आदिवासियों के प्रथम वर्ष की महत्त्वपूर्ण भाषा 'पानि' है तथा इसका समय अष्टम शताब्दी ई० पू० से पहली सदी ई० तक माना जाता है।

### वालि का नामकरण

[illegible]



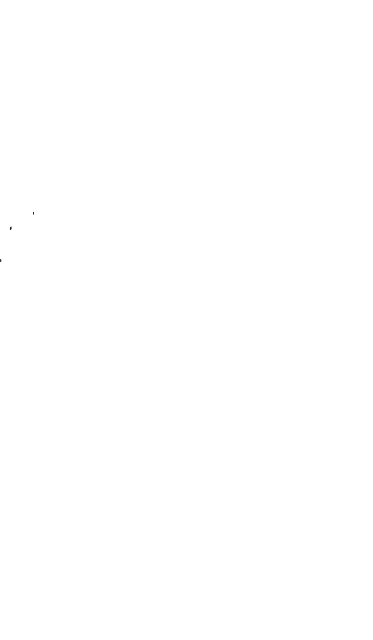
पालि' भाषा में उद्भव शब्दों का बाहुल्य है। तत्सम तथा देशज अपभ्रंशाकृत शब्दों में कम हैं। सगोतात्मक स्वराघात की स्थिति इस भाषा में अनिश्चित थी है। प्रियसैन के मतानुसार इनमें केवल अलात्मक स्वराघात था। लिंग भेद नहीं था। द्विवचन तथा धातुनेरद रूप कम ही थे। 'पालि' में सार-परिवर्तन प्रकृत की प्रेरणा अधिक था।

**प्राकृत भाषाएँ**—हेमचन्द्र के अनुसार प्राकृत की उत्पत्ति मगध में हुई है। निमि माधु सामान्य लोगों के वचन-व्यापार की प्राकृत का आधार मानते हैं। प्राकृत की उत्पत्ति 'प्राक् + कृत' (अर्थात् संस्कृत से पूर्व बनी हुई) से मानते हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि एक भाषा का संस्कार करके उसके रूप को सम्युक्त नाम दिया गया, वह भाषा जो असंस्कृत थी और पड़ितों या विद्वानों में प्रचलित इस भाषा के विरुद्ध जो 'प्राकृत' या सामान्य लोगों में सहज रूप में बोली जाती थी, स्वभावतः 'प्राकृत' नाम की अधिकारिणी बन गई। पालि-बाल की समाप्ति पर लोक-भाषा का यही रूप प्रचलित था।

**दिता-लेखी प्राकृत**—यह पालि भाषा के समकालीन थी। अशोक के दिनालेखों की प्राकृत को प्रयोगीय प्राकृत कहते हैं। अशोक ने स्तम्भों और चट्टानों पर राज्य के विभिन्न भागों में शासन तथा धर्म सम्बन्धी सिद्धान्त ज्ञाती तथा शरोष्ठों विधि में अभिलेख रूप में बीस से अधिक खुदवाये थे। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इन अभिलेखों का बड़ा महत्व है। इनसे ई० पू० तीसरी सदी के लगभग मध्य भाग की भाषा के विभिन्न स्वरूपों का जिन्हें तत्कालीन प्राकृत कहा जाता है, परिचय मिल जाता है। विद्वानों के अनुसार इनकी पाँच बोलियाँ थीं। यही म, मृ, पृ तीनों रूप प्राप्त होते हैं और वहीं पालि की भाँति 'स' ही। र, ल, य, ञ् के प्रयोग में पर्याप्त अन्तर है। इसमें रूप कम है। ऐसे पालि की भाँति है।

**प्राकृतों के भेद**

प्राकृतों के प्रचार के विषय में पर्याप्त मत-भेद हैं। विद्वानों ने बीस से अधिक प्राकृतों का उल्लेख किया है, परन्तु भाषा की दृष्टि से प्रमुखतः पाँच भेद ही माने जाते हैं—(१) पौरसेनी, (२) वैशाची, (३) महापट्टी, (४) धर्म मागधी तथा (५) मागधी।



४. **अट्टं** मागधी—इसका क्षेत्र मागधी घोर दोरमेनी का मध्यवर्ती प्रदेश है। यह प्राचीन योमन के घामराग की भाषा है। नाटको तथा जैन-साहित्य में गद्य-पद्य दोनों रूपों में इसका प्रयोग हुआ है। जैनियों ने इसे 'घार्गी' या 'घादि-भाषा' कहा है। इसका प्राचीनतम प्रयोग अट्टवर्णोप के नाटकों में मिलता है। ग, घ के स्थान पर 'स' तथा खवर्ग के स्थान पर कट्टी-कट्टी तवर्ग मिलता है। अन्य ध्वनियाँ मूर्द्धन्त्य हो गई हैं। यथा ध्रावक = गावक, म्बित = ठिप।

५. **मागधी**—मागधी प्राकृत मगध के घाम-गाम की भाषा है। लका में पाली को ही मागधी कहा है। इसका उद्भव दोरमेनी से माना जाता है। संस्कृत नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्र इनका प्रयोग करते हैं। गौडी, गावरी, चाण्डाली आदि इसके घनेक भेद हैं। इस प्राकृत में म, घ, के स्थान पर 'दा' तथा 'र' संबंध 'ल' हो जाता है, मघा, सप्त = सत्त, पुरुष = पुलिश, राजा = लाजा। स्व' घोर 'धं' के स्थान पर 'स्त' मिलता है। जैसे उपस्थित = उरस्थित, मधंवती = पस्तवती।

**प्राकृत की कुछ सामान्य विशेषताएँ**—प्राकृत भाषाएँ ध्वनि की दृष्टि से पालि के अधिकांश सन्निकट हैं। इसमें भी ह्रस्व ए, ओ, ऊ, लृह का प्रयोग चलता रहा। ए, ओ, ऊ, लृ का प्रयोग नहीं हुआ। प्राकृत में तीनों ऊष्म ङ (मागधी, पंजाबी आदि) प (पंजाबी) तथा स (मध्यमागधी) में मिलती है तथा कही-कही पर यह दूसरी ऊष्मध्वनि में परिवर्तित हो गई हैं। भागधी में 'र' का 'ल' 'ज', का 'य' पाया जाता है। अन्य प्राकृतों में 'य' का सामान्यतः 'ज' तथा 'र' 'ल' का परस्पर परिवर्तन में देखने में आता है। इन प्राकृतों में स्पर्श घोष सघर्ष व्यञ्जन भी थे, यथा ग, घ, ध, ज आदि प्राकृतों में 'ज' का विकास प्रायः 'ण' हो गया है। प्राकृतों में व्यञ्जान्त शब्द नहीं हैं। घल्पप्राण स्पर्शों का स्वर मध्यम होने पर लोप तथा महाप्राण स्पर्शों का मध्यग होने पर 'ह' में परिवर्तन हो जाता है। संस्कृत में विभक्त ( ) के स्थान पर प्रायः ए, ओ या 'म' का 'ज' रूप घोर घोष स्पर्शों का सघोष तथा सघोष का घोष में परिवर्तन हो जाता है। समीपकरण, लोप, स्वरभक्ति ध्वनि-परिवर्तन की प्रवृत्तियाँ अधिकतर महाराष्ट्री तथा मागधी भाषाओं आदि में लक्षित होती हैं। 'नीय' प्राकृत के प्रतिरिक्त अन्य प्राकृतों में द्विवचन का रूप दृष्टिगत नहीं























गभग वेकर का वर्गीकरण भी इसी प्रकार का है।

श्री सीताराम चतुर्वेदी ने सम्बन्ध-भूतक परसर्ग (विभक्ति या कारक) के आधार पर वर्गीकरण किया है। यथा—१ दा (हिन्दी, पहाड़ी, जयपुरी तथा जेजुरी)। २. दा (पञ्जाबी और लहँदा) ३ जो (निधी, कच्छी) ४. नो (गुजराती) तथा ५. एर (बंगाली, उड़िया, आसामी) वर्ग बनाए हैं। यथावत, हम कोई वर्गीकरण है नहीं।

जममूर्ति मलहोत्रा का 'आदर्श-वर्गीकरण'

(क) पश्चिमी भाषाएँ—१ छिपी, २ पञ्जाबी, ३ लहँदा, ४ राजस्थानी ५. गुजराती, ६. मराठी तथा पहाड़ी।

(घा) केन्द्रीय भाषाएँ—पश्चिमी हिन्दी।

(ङ) पूर्वी भाषाएँ—८ पूर्वी हिन्दी, ९. बिहारी, १०. बंगाली, ११ उड़िया तथा १२. आसामी।

एक वर्गीकरण डा० भोलानाथ तिवारी ने प्राकृत के आधार पर किया है। इन वर्गीकरण से आर्य-भाषाओं को वैज्ञानिक परिचय मिलता है।

प्रश्न २८—भारत की प्राचीन भाषाओं का तारतम्य दिखाते हुए हिन्दी के विकास पर प्रकाश डालिये।

अथवा

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति के क्रमिक इतिहास का स्पष्ट चित्रण कराइये।

वैदिक सभ्यता ही सभी भारतीय आर्य-भाषाओं का मूल-स्रोत मानी जाती है। लौकिक संस्कृत का जन्म इसी से हुआ है। धर्म की साहित्यिक सृष्टि और प्रतिष्ठा के कारण इस भाषा ने विश्व में प्रथम स्थान प्राप्त कर ली है। बौद्ध और जैन धर्म का विकास उस समय की प्रचलित लोक-भाषा से हुआ। उसका नाम पाली बिभक्त हुआ। आर्य उनकर यही रूप विभिन्न प्राकृत भाषाओं के रूप में बिभक्त हो गया। सभ्यता पाली तथा प्राकृत में साहित्य की रचना होने के कारण संसारिका ने उन्हें आकारण के नियमों में बाँध दिया। पञ्चसंस्कृत उसका एक-भाषा बिभिन्न होकर उसका स्वाभाविक प्रवाह तथा विकास एक गति पर प्राकृत की बड़ी बोलियाँ प्रचलित होकर प्रचलित



प्राचीन रूप से इसमें अनेक परिवर्तन हो गये हैं। हिन्दी के विकास की दृष्टि हिन्दी को तीन कालों में विभक्त किया गया है—

१. प्राचीन काल (१५०० ई० तक)।
२. मध्यकाल (१५०० से १८०० तक)।
३. आधुनिक काल (१८०० से अब तक)।

**प्राचीनकाल—**हिन्दी भाषा के प्रारम्भिक रूप तथा सामग्री का दर्शन हमें तीन राज्यों में उपलब्ध होता है—दिल्ली, बनौज तथा अजमेर। इन राज्यों में परस्पर फूट घोर घरेलू युद्ध होते रहते थे। दिल्ली में चौहान वंश के राजा पृथ्वीराज चौहान का शासन था और उनका राजनयि चन्द था। राठौर वंश भी राजधानी बनौज के अन्तिम सम्राट् जयचन्द का दरबार साहित्यिक चर्चा का मुख्य केन्द्र था तथा सत्सुत तथा प्राकृत भाषा को अधिक उमादर प्राप्त था। महाकाव्य नैषधीय-चरित के रचयिता श्री हर्ष जयचन्द के राजनयि थे। महोबा का राजनयि जगन्नाथक या जगन्निश तथा अजमेर के नरसिंह नाहू का नाम बादर से लिया जाता है। अधिकांश वाङ्मय के नष्ट हो जाने से उसके मूल-रूप का परिचय प्राप्त नहीं हो पाया है। ११६१ ई० में पृथ्वीराज और जयचन्द की पराजय से दिल्ली, बनौज और महोबा पर जो हिन्दी के तीन केंद्र थे, मुहम्मद गौरी के आधिपत्य के कारण मुसलमानों का शासन स्थापित हो गया था। इस प्रकार प्रायः समस्त हिन्दी प्रदेश विदेशी शासकों के अधिकांश में था। इस कारण हिन्दी भाषा के शिलालेख और साहित्यों की संख्या न्यूनतम है, केवल पृथ्वीराज तथा समरसिंह राज दरबार से सम्बन्धित हिन्दी के कुछ प्राचीन नमूने प्राप्त होते हैं परन्तु वे प्रामाणिक नहीं माने जाते हैं।

हिन्द तथा नायपरी बकियों का वाङ्मय (समय ७०० ई० से ११०० ई० तक) का प्राप्त होता है परन्तु इस सामग्री की प्राचीनता तथा प्रामाणिकता अभी सन्देह है। हिन्द-साहित्य की भाषा अशुद्ध भाषाही मानी जाती है। गोरखनाथ की गोरखबाणी प्रसिद्ध है। गुजरी की 'पुरानी हिन्दी' लेख में उद्धृत हिन्दी का अशुद्ध भाषाओं से प्रभावित राजस्थानी का ही एक नमूना है। भाग्य व विनोद आधिपत्य से पराजय पारसी और मुग़लों की और बनौज की रवि आहत हुई तथा सत्सुत और हिन्दी की उदय की दृष्टि से

























हिन्दी में कम है। खटखटाना, धमकाना आदि कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो तत्सम बहे जा सकते हैं पर वास्तव में हैं नहीं।

तत्समानास—कुछ शब्द संस्कृतजो के गढ़े चले आ रहे हैं और तत्सम समान प्रतीत होते हैं। जैसे—राष्ट्रीय, पौराणिक, उन्नायक, श्राप, प्रण आदि।

अपभ्रंश-भाव या तद्भवानास—हिन्दी शब्द-समूह में कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो लिग-परिवर्तन में सादृश्य के अनुसार बना लिए गए हैं। जैसे—मोसी का पुल्लिङ्ग मोमा। यह तद्भव का ही रूपान्तर मात्र है। अन्य उदाहरण दुलहिन आदि हैं।

प्रतिष्थान्यात्मक—कभी-कभी किसी शब्द के सादृश्य या सम्बन्ध बोध करने के लिए तथा प्रभाव डालने के लिए आवृत्ति कर दी जाती है, यथा—लोटा-घोटा, रोटी-फोटी आदि।

द्विज शब्द—हिन्दी में अनेक ऐसे शब्द हैं जो दो भाषाओं के शब्दों में समास करने पर बने हैं। उदाहरण—सरदार, रेलगाड़ी, यजमानधर।

हिन्दी शब्द-समूह पर अन्य प्राधुनिक भाषा-भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है और उन प्रांतीय भाषाओं के शब्द यथा स्थान हिन्दी में प्रवेश पा गये हैं।

उदाहरण—मराठी—प्रगति, लागू, खालू, बाबू। गुजराती—पड़ताल आदि।

२. भारतीय अनाय-भाषाओं से आगत शब्द—हिन्दी के तत्सम तथा तद्भव शब्दों में कुछ हद तक ऐसे हैं जो प्राचीन काल में अनाय-भाषाओं से आये-भाषाओं में आ गए थे। जिन प्राकृत शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्दों से नहीं हो पाती है उनको भी हम अनाय-भाषाओं से आए मान सकते हैं और ऐसे अनेक शब्द द्रविड तामिल, तेलुगू, कोल आदि अन्य भाषाओं में उपलब्ध होते हैं। ऐसे शब्दों की भाषा हिंदी में ग्लानतन है। द्रविड भाषाओं से आए शब्दों का शब्द हिंदी में बहुत कुछ बदल गया है। पुनराची द्रविड 'विले' हिंदी में 'विल्ला' होकर पुनः के बच्चे का शब्द देता है। हिंदी में मूर्खत्व बर्णों (टकार) का आगमन द्रविड भाषाओं के प्रभाव के कारण है। हिंदी का गणनावाचक 'बोड़ी' द्रविड कोल भाषाओं से आया है।

३. विदेशी भाषाओं के शब्द—ये शब्द भारत में विदेशी शासन के फल-













रूप	एकवचन	बहुवचन
पुं० घोडा—मूल रूप (कर्ता)	घोडा	घोड़े
विकृत रूप (अन्य कारक)	घोड़े	घोड़े
स्त्री० लडकी—मूल रूप (कर्ता)	लडकी	लडकियों, लडकियाँ
वि० रूप (अन्य कारक)	लडकी	लडकियों इत्यादि

कुछ भाषारान्त एक वचन शब्दों में भी कर्ता के अनिश्चित अन्य कारकों में एकारान्त विकृत रूप उपलब्ध होना है जैसे ऊपर कर्ता एकव० 'घोडा' अन्य कारक में एकारान्त एकव० 'घोड़े' रूप में परिवर्तित हो गया है। इन विकृत रूपों के विषय में यह मत है कि ये संस्कृत की भिन्न-भिन्न विभक्तियों के एक वचन रूपों का अवशेष मात्र हैं।

प्रायः यह देखा जाता है कि हिन्दी संज्ञाओं के मूल तथा विकृत रूपों में 'घो' लगाने से पूर्व ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों में 'ई' और 'ऊ' के स्थानों पर क्रमशः 'इ' और 'उ' कर दिया जाता है। स्त्रीलिंग के अन्त रूपों में ईकारान्त या ईकारान्त तथा ऊकारान्त संज्ञाओं के मूलरूप बहुवचन में 'घी', 'ई' तथा 'उ' रूप बन जाते हैं। संज्ञा के मूल तथा विकृत रूपों में सामान्यतः समस्त सम्भावित परिवर्तन इस प्रकार दिए जा सकते हैं—

	पुलिङ्ग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
अकारान्त				
मूल रूप	घा	ए	×	एँ
विकृत रूप	ए	घो	×	घो
अन्य रूप				
मूल रूप	×	×	×	एँ, घी
विकृत रूप	×	घो	×	घो
लिंग				

प्राकृतिक यह तथा चेतन पदार्थों के अनुसार लिंगों का वर्गीकरण प्राचीन तथा आधुनिक ज्ञान से तीन वर्गों में विभाजित किया गया। पुरुषपदार्थ पदार्थों, लैंगिक पदार्थों तथा लिंग की भावना के बिना पदार्थों की दशा













संश्लिष्ट हो हो है।

२. कर्म तथा सम्प्रदान कारक—हिन्दी में कर्म तथा सम्प्रदान के लिए एक ही प्रसार के कारक-चिह्नो का व्यवहार किया जाता है। लड़ी बोली में 'को' चिह्न दोनो विभक्तियों में प्रयुक्त होता है तथा 'के लिए' विशेषत सम्प्रदान में आता है।

बो—टुम्प के पत में दलकी व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'कृत' से है। इसका विकास-क्रम इस प्रकार है—कृत > कितो > किमो > को। इसी प्रकार कृत से 'बहु' भी उत्पत्ति श्रु लोप के अनन्तर 'त' ध्वनि का महाप्राणीकरण (ह) है। प्राकृत में कत और कद रूप भी मिलते हैं।

हान्सी, बोम्ब तथा बेंटर्जी आदि विद्वान् 'बो' की उत्पत्ति संस्कृत 'कक्ष' से मानते हैं, यथा—कक्ष > कस्य > कास्य > काह > बहु > बह > बो > को। 'कक्ष' का धर्म समीप या घोर के रूप में ग्रहण किया जाता है।

के लिए—के का सम्बन्ध संस्कृत 'कृते' घोर लिपि का 'लमे' > लमि > लमे से जोड़ा जाता है। हिन्दी बोलियों में इसी धर्म में 'लामि', 'लमे' बिना प्रयुक्त होते हैं। तत्त्वजीवन वर्मा के मतानुसार 'के', 'बो' कारक चिह्नों को सम्बन्धवाचक प्राचीन सिन्धु 'बेरक' का रूपान्तर मानते हैं। हान्सी 'लिए' भी व्युत्पत्ति 'लमे' (लामाये) से मानते हैं। पर अन्तिम दोनो मत सर्वमान्य नहीं है। हान्सी ने धन्य हिन्दी की कुछ सामीप्य बोलियों के मुख्य शब्दों की व्युत्पत्ति इस प्रकार से दी है—

हिन्दी बोली	अपभ्रंश रूप	प्राकृत रूप	संस्कृत शब्द
टाई	टाणि	टाणे	खाने
पाहि	पण्डे	पहि	पण्डे
बन	बणे	—	बर्षे
बाब	बण्डे	बण्डे	बार्षे
ताई, तई	तराए	तरिए	तरित
बाट	बट्टे	बण्डे	बाट्टे
बर	—	—	बर

३. उपकरण तथा सहायक कारक—हिन्दी भाषा में इन दोनो कारकों का



सज्ञाओं के स्थान पर सर्वनामों का प्रयोग किया जाता है घट इनके रूप की विभक्तियों में सज्ञा रूपों के समान चलते हैं। इनको घाठ भागों में शक्ति किया गया है। सक्षिप्त रूप में उनकी व्युत्पत्ति नीचे दी जाती है।

१. पुरुष वाचक सर्वनाम—इसके तीन भेद हैं—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष या अन्य पुरुष। अन्य पुरुष का विवेचन निश्चयवाचक के साथ किया जाएगा।

उत्तम पुरुष—इनके निम्न मुख्य रूपान्तर हैं—

	एकवचन	बहुवचन
भूतरूप	मैं—	हम
विकृतरूप	मुझे (मुझ) —	हमें
सम्बन्ध कारक	मेरा—	हमारा

मैं—इसका सम्बन्ध घट से न होकर संस्कृत तृतीय रूप 'मया' से निर्धारित किया गया है। इसका विकास मया > प्रा० मई (मए) > घप० मई > हिन्दी मैं, है। मैं की अनुस्वार ध्वनि तृतीया 'एन' के प्रभाव से है।

मुझ—इसका उद्भव संस्कृत 'मह्य' से माना जाता है। जैसे मह्य > मयन > मझ > मुझ। मझ से मुझ की रचना तुझ के सादृश्य पर हुई है। कुछ विद्वान् इसका विकास प्राकृत रूप मह से मानते हैं। इसी का रूप मैं के आधार पर म—

रूप 'घम्रे' से है जो वैदिक 'घस्मे' का

विकास श्रुतता का

'मई' से स्थिर किया

संस्कृत यह से है।

ही (वज)।

का सम्बन्ध प्राकृत रूप

में यही रूप ग्राही

करी, करो प्रत्यय है।



इस—इसका विकास मस्कृत अस्य, प्राकृत एअस्म से माना जाता है।  
 चंटवों 'इस' का अनुमान मस्कृत एतस्य से करते हैं।

इन—यह रूप एतेन > एदिण > एदणा से सदिध है। 'न' में पठ्ठी बहु-  
 वचन का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इसे, इन्हें मूल रूपों के विवृत रूप हैं।

वह—इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित है। तद् रूपों से इनका यथार्थ सम्बन्ध  
 नहीं है। चंटवों के मतानुसार मस्कृत के कल्पित रूप 'मव' > प्राकृत 'मो'  
 से वह की उत्पत्ति है। 'मव' और 'मो' रूप ईरानी और दरद भाषामो में भी  
 मिलता है। 'उस' का सम्बन्ध प्राकृत अउस्स तथा मस्कृत अवस्य से जोड़ा जा  
 सकता है। इसी प्रकार वे और इन का अनुमान किया जा सकता है। इसे,  
 इन्हें विवृत रूप हैं।

३. अनिश्चयवाचक सर्वनाम—इसके मुख्य रूपान्तर इस प्रकार हैं।

	एक०	बहु०
मूल रूप	कोई	कोई
विवृत रूप	किसी	किसी

कोई—इसकी व्युत्पत्ति मस्कृत 'कोऽपि' से है। प्राकृत में कोडि तथा  
 हिन्दी में कोई बन गया। प से व और बड़ हो जाना प्रनि-नियमों के  
 अनुकूल है।

किसी—मस्कृत दास्य 'कस्यापि' का ही रूपान्तर हिन्दी का किसी है। किसी  
 रूप की व्युत्पत्ति सदिध तथा अनिश्चित है।

कुछ—इसका सम्बन्ध मस्कृत 'कश्चिद्' से माना जाता है। प्राकृत में इस  
 का 'कुप्प' रूप मिलता है।

४. सम्बन्धवाचक सर्वनाम—हिन्दी सम्बन्धवाचक सर्वनाम के प्रमुख निम्न  
 रूप हैं—

	एक व०	बहु व०
मूल रूप	जो—जो	
विवृत रूप	जिसें जिसें	जिन, जिन्हें।

जो—यह तो संस्कृत 'यः' का रूपान्तर है। य > जो > जो।

जिसें—इसका सम्बन्ध संस्कृत दास्य से है। दास्य > जिसें > जिन।





ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है। हिन्दी की बोलियों में कौन के स्थान पर 'को' रूप भी मिलते हैं। इसकी उत्पत्ति स्पष्टतः संस्कृत 'कः' से है।

किस—संस्कृत कस्य > प्राकृत कस्य > किस।

किन—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत कानां या बाणां (केषां) कल्पित रूपों से मानी जाती है। जैसे—सं० काना > प्रा० केणा > केना > किन। किसे, किन्हें रूप अन्य प्रचलित रूपों के समान हैं।

क्या—हिन्दी 'क्या' की उत्पत्ति अनिश्चित है। कि से इसका सम्बन्ध अभी विचारणीय है।

प्रश्न ३५—हिन्दी क्रिया के कालों में संस्कृत कालों के कौन से रूप अवलोक्य रह गये हैं। दोनों का सम्बन्ध स्थापित कीजिये।

या

हिन्दी क्रियाओं की व्युत्पत्ति बताइये।

संस्कृत भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसका सयोगात्मक होता है। भनेक रूपों की भाँति कुछ अववादों को छोड़कर प्रायः संस्कृत क्रियाएँ सयोगात्मक ही थीं। छ. प्रयोग, दस शाल, तीन पुरुष और तीन वचन के अनुसार प्रत्येक संस्कृत धातु के ५४० ( $६ \times १० \times ३ \times ३$ ) भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक की प्रथमी व्याकरणिक विशेषता के फलस्वरूप रूप-साम्य भी नहीं पाया जाता है। इस विशेषता के कारण संस्कृत की लगभग दो हजार धातुओं को व्याकरण आदि दस गणों में विभक्त कर दिया गया है। गणों की धातुओं में रूप में परस्पर अधिक भेद पाया जाता है। इसलिए संस्कृत धातु रूप अधिक जटिल और दुरुह है।

मध्यकालीन आर्य-भाषाओं में धातुरूप—रचना की दृष्टि से समानानुबूल करण होने से। मध्यकालीन आर्य भाषाओं में क्रिया तीसरी सयोगात्मक ही रही पर रूपों की संख्या संस्कृत की तुलना में कम हो गई थी। व्याकरण में धातुओं की संख्या अधिक होने से और उपयोगिता की दृष्टि से इसका प्रभाव अन्य बोलियों पर भी पड़ा। यह परिवर्तन हमें पालि भाषा में दृष्टिगत होने लगा था। संस्कृत विशेषण का पालि में मोड़ हो गया और छः प्रयोगों में से परस्पररूप का प्रभाव अधिक बढ़ जाने से पालि ही प्रयोग पालि में ध्वजित रहे। इससे मध्यकालीन की



हिन्दी की धातुएँ—हान्सी ने गणना कर हिन्दी की धातुएँ पाच सौ मानी ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी धातुओं के दो रूप हैं—मूल धातु तथा योगिक । संस्कृत से हिन्दी में आने वाली धातुएँ मूल कही जा सकती हैं । हान्सी गुजार इनकी संख्या ३६३ है । कुछ मूल धातुएँ संस्कृत धातुओं से स्वरूप दृष्टि से साम्य रखती हैं । यथा हिन्दी की 'खा' तथा संस्कृत की 'खाद्' में अन्त साम्य है । कुछ धातुओं में संस्कृत के किसी विशिष्ट गण का प्रभाव पड़ा है या प्रायः गण-परिवर्तन हो जाता है । उदाहरणार्थ हि० नाच < सं० नच + घादि ।

(क) मूल धातु—मूल धातुओं को बार बर्गों में रक्खा जाता है—

१. वे हिन्दी की मूल धातुएँ जो प्राचीन भारतीय धार्य-भाषाओं (प्रा० भा० धा०) से क्रमगत आई हैं तथा उनका सम्भवतः तद्भव रूप ही मिलता है ।

२. वे मूल धातुएँ जो प्रा० भा० धा० की धातुओं के प्रेरणार्थक रूपों से विकसित हुई हैं । इनका भी प्रायः तद्भव रूप मिलता है ।

३. वे मूल धातुएँ जो आधुनिक काल में सीधे संस्कृत से ली गई हैं । वे तत्सम या घट्ट-तत्सम रूप में हिन्दी में लक्षित होती हैं ।

४. वे मूल धातुएँ जिनकी व्युत्पत्ति सदिष्ट है, पर रूप की दृष्टि से संस्कृत धातुओं के सदृश प्रतीत होती हैं ।

(ख) योगिक धातु—हिन्दी योगिक धातुएँ वे कहलाती हैं जिनका विकास संस्कृत धातुओं से नहीं हुआ है बल्कि जिनका सम्बन्ध या तो संस्कृत रूपों से है या आधुनिक काल में मूल रूप में रचिन है । इनके तीन विभाग किये जा सकते हैं—

१. नाम धातु—जिनका निर्माण समा रूपों से हुआ है, यथा (हि० बन < सं० जन्म) ।

२. सपुंसक धातु—जो कता वा लिप्ता है, जैसे हिन्दी चुक < सं० चुक + क्त ।

३. अनुबन्धक धातु—उदाहरणार्थ हिन्दी पढ़ना, पढ़ा + ना + क्त ।

इन तीनों हिन्दी में योगिक धातुओं का क्रम १७६ मानी है । कुछ और



पा—हिन्दी 'पा' < प्राकृत पाइ, ठाई < संस्कृत 'स्थित' रूप में प्राप्त आ है।

होना—हि० होता < प्रा० होन्तो, हान्ती < सं० भवत्।

हूँ—(बो० हूँ, भयो) / प्रा० भवि० < सं० भवति।

रहना—हिन्दी 'रहना' की व्युत्पत्ति सदिग्ध है। टनर ने इसका सम्बन्ध 'रहित' आदि शब्दों की भाँति रह घातु से माना है।

पढ़ाई, बगाली, गुजराती, राजस्थानी तथा पुरानी भवघी आदि में बसन्त 'छ' ध्वनि से युक्त सहायक प्रिया की व्युत्पत्ति प्रा० भा० भा० की बलिष्ठ धातु √षष्ठ से माना जाती है। टनर इसका सम्बन्ध सं० 'मा √धे' से जोड़ते हैं।

बढ़े—पूर्वो हिन्दी की कुछ बोलियों में यह रूप मिलता है। इसका धातुध्वनि सं० √वृत् से जोड़ा जाता है। यथा—हि० बाढ़े < प्रा० बृद्धि < सं० वृद्धे।

हिन्दी शब्दांशों के काल—प्रमुख रूप से कालों की संख्या प्रायः तीन ही। जानी है—वर्तमान, भूत और भविष्यत्। परन्तु निम्नवाच्य, धात्रायें, पणनाई तथा व्यापार की सामान्यता और अपूर्णता आदि की दृष्टि से हिन्दी शब्दों की संख्या सोलह तक मानी गई है। ऐतिहासिक रूप से हिन्दी शब्दों की तीन बड़ी सं विभाजन किया जा सकता है।

(क) संस्कृत कालों के आद्योक्त काल—इस वर्ग में वर्तमान संभाषनाएँ और आचार्य की गणना की जाती है। आचार्य विद्वत्सं के मत में हिन्दी संभाषन संभाषनाई ध्वनि का सम्बन्ध संस्कृत के वर्तमान काल के कर्त्तव्य धातु से माना जाता है। उदाहरणार्थ—संस्कृत 'भवायि' > प्राकृत 'भवायि' > अपभ्रंश 'भवायि' और हिन्दी धातु का विकास हुआ है। हिन्दी के प्रमुख कालों की व्युत्पत्ति संस्कृत के कर्त्तव्य से माना जाता है। सं० प्रत्यय पुरुष काल की व्युत्पत्ति संस्कृत के कर्त्तव्य से माना जाता है, यथा, 'उठो' बराही और 'उठो' हि०। इसी प्रकार अपभ्रंश पुरुष काल की व्युत्पत्ति संस्कृत के कर्त्तव्य से माना जाता है। यथा, 'उठो' हि०। इसी प्रकार अपभ्रंश पुरुष काल की व्युत्पत्ति संस्कृत के कर्त्तव्य से माना जाता है। यथा, 'उठो' हि०।









• भविष्यत् काल में भी इस—'ब' धन्त वाले रूप का प्रयोग पाया जाता है ।  
 क) कर्तृवाचक सज्ञाएँ त्रिव्यायंक सज्ञा के विकृत रूप में वाला, हारा आदि  
 उद्ग सगाकर बनाई जाती हैं । जैसे जाने वाला, पकड़ने वाला आदि । हिन्दी  
 भाषा का सम्बन्ध सं० 'पालक' तथा 'हारा' का सम्बन्ध सं० 'धारक' से जोड़ते  
 हैं । कुछ बोलियों में 'प्रदया' लगाकर भी कर्तृवाचक सज्ञा की रचना की  
 जाती है, यथा पढ़ैया, करैया आदि । इसका उद्भव भी संस्कृत 'तृक' से है ।  
 जैसे, पढ़ैया < पठतृकः ।

१. तात्कालिक कृदन्त—तात्कालिक कृदन्तों का निर्माण वर्तमानकालिक  
 कृदन्तों में 'ही' लगाकर किया जाता है । प्रायः वर्तमानकालिक कृदन्त के  
 विकृत में ही प्रयुक्त किया जाता है, यथा—जाते ही, नहाते ही आदि । अपूर्ण  
 क्रिया दोतक कृदन्त वर्तमान कालिक कृदन्त का ही एक परिवर्तित रूप है ।  
 जैसे—उसे पुस्तक पढ़ते नींद आ गई । भूतकालिक कृदन्त के विकृत रूप से  
 पूर्ण क्रिया दोतक कृदन्त का जन्म हुआ है । उदाहरणार्थ—'उमे गये बहुत दिन  
 हो गये ।'

प्राधुनिक काल में हिन्दी कृदन्तों का प्रयोग काल के धर्म में होने लगा है ।  
 संस्कृत कृदन्तों से ही हिन्दी कृदन्तों की उत्पत्ति हुई है परन्तु काल रूप में  
 प्रयुक्त हिन्दी कृदन्तों का सम्बन्ध सीधा संस्कृत कालों से नहीं है । मूल कालों की  
 कमी हो जाने से प्राकृत में भी इसी प्रकार कृदन्तों का प्रयोग पाया जाता है ।  
 प्राधुनिक काल में जब प्राचीन कालों के सयोगात्मक रूप लुप्त हो गये तो  
 वे







ठानीस, पचासीस आदि ।

पचास—हिन्दी का पचास प्राकृत में पचासा और संस्कृत में 'पचासत्' रूप मिलता है । संयुक्त संस्थाओं में पचास का स्थानापन्न रूप 'पन', 'वन' तथा 'जन' है । जैसे बावन, तिरपन और चौपन आदि । उनच्चास, पचास के आधार पर बना है ।

षाठ—हिन्दी की इस संख्या के रूप प्राकृत में 'सठ्ठि' तथा संस्कृत में 'षष्टि' मिलते हैं । संयुक्त संस्थाओं में इसका रूपान्तर 'सठ' है, यथा—इकसठ, बासठ, तरेसठ आदि ।

सत्तर—हिन्दी के सत्तर का प्राकृत में 'सत्तरि' तथा संस्कृत में 'सप्तति' रूप प्राप्त होता है । पालि तथा प्राकृत में 'त' ध्वनि 'र' में परिवर्तित हो गई है । हिन्दी के सत्तर पर इन्ही प्राकृत रूपों का प्रभाव है । चंटरजी महोदय के मत में 'सप्तति' में ति<टि—डि<रि ध्वनि विकसित हो गयी है । परन्तु यह अभी सर्वमान्य नहीं है । संयुक्त संस्थाओं में 'सत्तर' की 'स' ध्वनि 'ह' में बदल गई है, जैसे उनहत्तर, इकहत्तर, बहत्तर आदि । सत्तर में 'ह' का लोप घटगर में 'ह' महाप्राण 'ठ' में मिल गया है ।

अस्सी—हिन्दी अस्सी का विकास >प्राकृत 'असीइ' >संस्कृत 'असीति' से हुआ है । संयुक्त संस्थाओं में प्राचीन अथवा यासी रूप मिलता है, यथा—उनासी, ब्यासी आदि । अस्सी में 'स' का द्विव रूप पञ्जाबी के प्रभाव से है ।

नब्बे—यह रूप प्राकृत के 'नब्बए' तथा संस्कृत के 'नवित' का रूपान्तर है । संयुक्त संस्थाओं में प्राकृत समकथ 'नब्बे' रूप मिलता है, जैसे बानबे, तिरा-तबे आदि ।

सो—हिन्दी का सो प्राकृत में 'सध' तथा 'सप' और संस्कृत में 'सप्त' है । इसका रूपान्तर संयुक्त संस्थाओं में 'सै' हो जाता है, यथा, मैरा, चार सै एक ।

हजार—हिन्दी में यह पञ्जाबी का तत्सम शब्द है । संस्कृत संयुक्त संस्थाओं में शब्द के स्थान पर 'दशसहस्र' का प्रयोग प्रचलित हो गया था । हिन्दी में 'हजार' का प्रयोग मुस्लिम-काल से चल रहा है ।

लाख—संस्कृत में इसका रूप 'लक्ष' है तथा संस्थाओं में 'लख' रह गया है,

















**भाज**—इसका विकास हिन्दी संस्कृत शब्द 'मघ' से हुआ है। भाज में 'मघ' के 'य' की तालव्य ध्वनि (ज) तोप रही है और स्पर्श तथा अन्तस्थ वर्णों के योग में दोनों लुप्त हो गये हैं। लुप्त 'द' का तृतीय स्थान तालव्य ध्वनि 'ज' में सुरक्षित है और आदि स्वर दीर्घ हो गया है।

**इतवार**—संस्कृत आदित्यवार से इतवार की उत्पत्ति स्पष्ट है। आदि स्वर 'धा' तथा मध्य व्यंजन 'द' का तोप होकर इतवार तोप रह गया है। ध्वनि-विकास लोपीकरण का सिद्धांत लागू हुआ है।

**उन्नीस**—यह संस्कृत एकोनविंशति > उनविंशति का ही रूपान्तर है। ध्वनि-परिवर्तन के अन्तर्गत अन्तिम वर्ण 'ति' लुप्त होकर 'य' ध्वनि 'ई' में परिवर्तित हो गई। 'घ' का 'ख' बन गया। अतः उन्नीस बना।

**करोड़**—कोटि संस्कृत शब्द से यह निम्न है परन्तु ध्वनि-नियमों के लागू न होने के कारण इसकी उत्पत्ति सदिग्ध है।

**काज**—काज संस्कृत 'कार्य' का विकसित रूप है। कार्य की मध्य ध्वनि 'र' का तोप हो गया तथा 'य' तालव्य ध्वनि 'ज' में बदल गई और काज बन गया।

रूपान्तर है। मध्य व्यंजन 'र' का तोप हो मे परिवर्तित हो गई और केवट का अन्व-

रदं

व्यंजन 'य' का तोप रूप 'व' के मयोग से हुआ है। 'ट' में 'र' लुप्त और 'ड' दृष्टि से भी 'द' और 'ड' हो गया है। अन्त्य स्वर 'म'

है। 'य' के तोप हो जाने

से माना जाता है।

हुआ। मध्य व्यंजन 'य' का



**घाज**—इसका विकास हिन्दी सस्कृत शब्द 'घज' से हुआ है। घाज में 'घज' के 'घ' की तालव्य ध्वनि (ज) दोष रही है और स्पर्श तथा अन्तस्थ वर्णों के योग में दोनों लुप्त हो गये हैं। लुप्त 'द' का तृतीय स्थान तालव्य ध्वनि 'ज' में सुरक्षित है और घादि स्वर दोष हो गया है।

**इतवार**—संस्कृत घादित्यवार से इतवार की उत्पत्ति स्पष्ट है। घादि स्वर 'घा' तथा मध्य व्यजन 'द' का लोप होकर इतवार दोष रह गया है। ध्वनि-विकास लोपोकरण का सिद्धांत लागू हुआ है।

**उन्नीस**—यह सस्कृत एकोनविंशति > उनविंशति का ही रूपान्तर है। ध्वनि-परिवर्तन के अन्तर्गत अन्तिम वर्ण 'ति' लुप्त होकर 'व' ध्वनि 'ई' में परिवर्तित हो गई। 'घ' का 'स' बन गया। अतः उन्नीस बना।

**करोड़**—कोटि सस्कृत शब्द से यह निःसृत है परन्तु ध्वनि-नियमों के लागू न होने के कारण इसकी उत्पत्ति सिद्ध है।

**काज**—काज सस्कृत 'कायं' का विकसित रूप है। कायं की मध्य ध्वनि 'र' का लोप हो गया तथा 'य' तालव्य ध्वनि 'ज' में बदल गई और काज बन गया।

रूपान्तर है। मध्य व्यजन 'र' का लोप हो  
मे परिवर्तित हो गई और केवल रूप बच-

रहें-

व्यजन 'व' का प्रयोग रूप 'व'  
के संयोग से हुआ है। 'उ'  
से 'र' लुप्त हो और 'ड'  
दृष्टि से भी 'द' और 'ड'  
हो गया है। अन्त्य स्वर 'य'

है। 'य' के लोप हो जाने

'य' से माना जाता है।  
हुआ। अन्त्य व्यजन 'य' का





**घाज**—इसका विकास हिन्दी संस्कृत शब्द 'घघ' से हुआ है। घाज में 'घघ' के 'य' की तात्पर्य ध्वनि (ज) दी गई है शीघ्र स्पर्श तथा अन्तर्गम्य वर्णों के योग में दोनों लुप्त हो गये हैं। लुप्त 'द' का तृतीय स्थान तात्पर्य ध्वनि 'ज' में सुरक्षित है और घादि स्वर दीर्घ हो गया है।

**इतवार**—संस्कृत घादिस्ववार से इतवार की उत्पत्ति स्पष्ट है। घादि स्वर 'घा' तथा मध्य व्यंजन 'द' का लोप होकर इतवार दीर्घ रह गया है। ध्वनि-विकास लोपोत्पत्ति का सिद्धांत सागू हुआ है।

**उन्नीस**—यह संस्कृत एकोनविंशति > उनविंशति का ही रूपान्तर है। ध्वनि-परिवर्तन के अन्तर्गत अन्तिम वर्ण 'ति' लुप्त होकर 'व' ध्वनि 'ई' में परिवर्तित हो गई। 'घ' का 'न' बन गया। घन उन्नीस बना।

**करोड़**—कोटि संस्कृत शब्द से यह निम्न है परन्तु ध्वनि-नियमों के सागू न होने के कारण इसकी उत्पत्ति सिद्ध है।

**काज**—नाज संस्कृत 'कायं' का विकल्पित रूप है। कायं की मध्य ध्वनि 'र' का लोप हो गया तथा 'य' तात्पर्य ध्वनि 'ज' में बदल गई और काज



**घाज**—इसका विकास हिन्दी संस्कृत शब्द 'घघ' से हुआ है। घाज में 'घघ' के 'य' की तात्त्व्य ध्वनि (ज) दोष रही है और स्पर्श तथा धन्तस्थ वर्णों के योग में दोनों लुप्त हो गये हैं। सुप्त 'द' का तृतीय स्थान तात्त्व्य ध्वनि 'ज' में सुरक्षित है और घादि स्वर दीर्घ हो गया है।

**इतवार**—संस्कृत घादित्ववार से इतवार की उत्पत्ति स्पष्ट है। घादि स्वर 'घा' तथा मध्य व्यञ्जन 'द' का लोप होकर इतवार दोष रह गया है। ध्वनि-विकास लोपीकरण का सिद्धांत लागू हुआ है।

**उन्नीस**—यह संस्कृत एकोनविंशति > उनविंशति का ही रूपान्तर है। ध्वनि-परिवर्तन के धन्तगंत धन्तिम वर्ण 'ति' लुप्त होकर 'व' ध्वनि 'ई' में परिवर्तित हो गई। 'घ' का 'स' बन गया। घउ उन्नीस बना।

**करोड़**—कोटि संस्कृत शब्द से यह निम्न है परन्तु ध्वनि-नियमों के लागू न होने के कारण इसकी व्युत्पत्ति सदिग्ध है।

**काज**—काज संस्कृत 'कार्य' का विक्रमित रूप है। कार्य की मध्य ध्वनि 'र' का लोप हुआ 'य' तात्त्व्य ध्वनि 'ज' में बदल गई और काज



नेवना—इस शब्द की व्युत्पत्ति सम्भूत 'नकुन' से है। 'उ' अर्द्ध स्वर 'ह' में परिवर्तित हो गया। 'न' के 'अ' का 'ए' तथा 'न' के 'अ' का दीर्घ हो गया। इस प्रकार नेवना शब्द बना।

पचपन—इसका सम्भूत रूप पचापन है, पर पचापन में 'पचपन' बनना अशुद्ध है। प्रतीत होता है 'पन' की व्युत्पत्ति प्राकृत रूप 'पचाना' से है। पच पचाना से पच के अनुस्वार का संयोजन होकर 'पच और अन्तिम वन 'ना' का संयोजन हुआ गया। 'पना' में 'पन' संयोजन रहा। और रूप पचपन बन गया।

पचहर—यह सम्भूत 'पच मल्लि' या मल्लिक है। इसमें पच के विषयानुसार 'ह' हो गया। पर 'नि' का 'र' होता सम्भव नहीं। इसका रूप 'मल्लि' मिलता है। अन्तिम मल्लिक में इसकी व्युत्पत्ति नि नि नि नि मानी है जो प्रायः अशुद्ध है।













साधारणतया प्रत्येक वैदिक शब्द में गीतात्मक स्वराघात पाया जाता है। चीनी भाषा प्रायः भी संगीतात्मक है। वैदिक भाषा में बलात्मक स्वराघात का अस्तित्व था; लेकिन वह प्रमुख न होने के कारण चिह्नित नहीं किया जाता था। प्राकृतों में महाराष्ट्रीय, मागधी (मगध) जैन, काव्यात्मक अपभ्रंश तथा जैन गोरखेनी में यह स्वराघात वर्तमान था।

२. बलात्मक स्वराघात—बलात्मक स्वराघात का सम्बन्ध फेफड़ों से है। इसमें संगीतात्मक स्वराघात की भाँति ध्वनि ऊँची-नीची नहीं की जाती है अपितु साँस को धक्के के साथ छोड़कर जोर दिया जाता है। फेफड़ा तेजी से वायु फेंकता है। इस प्रकार शब्द के जिस अक्षर पर बलात्मक स्वराघात होता है उसकी आवाज कुछ जोर में मुताई पड़ती है। लैटिन और अवेस्ता में बलात्मक स्वराघात अधिक था। आधुनिक भाषाओं में अंग्रेजी और फारसी में भी यह पाया जाता है। इससे शब्द के अर्थ में भी प्रायः परिवर्तन हो जाता है। जैसे Conduct (कॉन्डक्ट) शब्द में स्वराघात (c) पर है तो शब्द सजा और यदि (d) पर है तो क्रिया हो जायेगा। यह बलात्मक स्वराघात शब्दात् के पूर्व प्रथम दीर्घ स्वर पर प्रायः रहता है। संस्कृत श्लोकों के उच्चारण में प्रायः इस प्रकार का स्वराघात प्रचलित है। गोरखेनी, मागधी तथा प्राकृतों में संस्कृत के बलात्मक स्वराघात का विकसित रूप वर्तमान कहा जाता है। प्रो० टैनर के अनुसार आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में संगीतात्मक तथा बलात्मक दोनों ही स्वराघातों का अस्तित्व है। इस विषय में अनेक विद्वानों में मतभेद भी है। परन्तु यह निश्चित है कि वैदिक काल के पश्चात् लिखित रूप में स्वराघात चिह्नित करने का रिवाज उठ गया था अतः अधिकांश सामग्री अनुमान पर ही आधारित है।

३. कषात्मक स्वराघात—यह स्वराघात गीतात्मक तथा बलात्मक स्वराघातों से भिन्न है। प्रायः अनुप्रास की स्वरतन्त्रियाँ शारीरिक बनावट के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति के स्वर तथा गहरे में भिन्नता होती है। इसी लहजे या बोलने के विशेष ढंग से हम एक व्यक्ति की आवाज की हवारी में पहचान सकते हैं। यह स्वराघात बोलने में ही प्रयुक्त होता है। इस का यह अन्तर कायमोष्ण के बिन्दु में देखा जा सकता है।



उभयुक्त पाद में रे, रे, 'के' ये तीनों दीर्घ हैं परन्तु छंद की दृष्टि से ह्रस्व हैं। इस कारण जिन वर्णों पर स्वराघात नहीं है वे धाहे मात्रा की दृष्टि से ह्रस्व हों या दीर्घ स्वराघात के अभाव में ह्रस्व ही माने जाते हैं। कवित्त और पद्याक्षरी में भी इसी नियम का प्रायः पालन किया जाता है।

अक्षरी में भी बलात्मक स्वराघात की स्थिति साध्य है। वाक्य में व्यवहृत एकाक्षरी छन्दों में स्वराघात पाया जाता है। द्व्यक्षर, त्र्यक्षर तथा अधिक अक्षर वाले छन्दों में अन्त के दो अक्षरों में से उम पर न्यगघात होता है जो दीर्घ हो या स्थान के कारण दीर्घ माना जाय। यदि दोनों अक्षर दीर्घ या ह्रस्व हों तो स्वराघात उपान्त्य अक्षर पर होता है, जैसे पित्तान, पक्षीस, भाषद आदि।

इस प्रकार स्वराघात का हिन्दी में विकास वैदिक काल से चली हुई एक समीचीन परम्परा की श्रृङ्खला मात्र है।

प्रदन् हिन्दी भाषा की वैज्ञानिक परिभाषा दीजिए तथा उसके साहित्यिक रूप पर दृष्टि डालते हुए खड़ी बोली की उत्पत्ति और विकास पर एक सप्प लेख लिखिए।

रूप की दृष्टि से हिन्दी छन्द पारसी भाषा का है जिसका अर्थ हिन्द देश का वासी या हिन्द देश की भाषा दोनों अर्थों में हो प्रयुक्त होता था। छन्दार्थ की दृष्टि से हिन्दी छन्द का प्रयोग हिन्द या भारत में बाली जाने वाली किसी आर्य अथवा अनार्य भाषा के लिए हो सकता है किन्तु व्यावहारिक रूप से हिन्दी उस बड़े भूभाग की भाषा मानी जाती है, जिसकी सीमाएँ पश्चिम में जैमनगढ़, उत्तर-पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में दिल्ली से लेकर नेपाल पूर्वी छोर तक के पर्वतीय प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में आसनपुर, दक्षिण में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में छण्डवा तक फैली हुई है। भाषा-विज्ञान के अनुसार इस हिन्दी प्रदेश की तीन-चार उपभाषाएँ मानी या कबजा जाय-बानी, बिहारी, पहाड़ी तथा पूर्वी हिन्दी। मूल्य का यह हिन्दी प्राचीन रूप में अत्यन्त घटका अन्वेषण की भाषा कहलाता है। यह - की हिन्दी का बन्ध आता और तो उत्तर में हिन्दी का उद्गार, १०-१२ की भाषा तक और दक्षिण में नर्मदा की घाटी तक और दूर तक



खड़ी बोली का प्रारम्भ—प्रारम्भ में खड़ी बोली के सम्बन्ध में एक भ्रम था कि इसका प्रादुर्भाव अंग्रेजों के भारत आगमन पर हुआ। इतिहास में ज्ञात होता है कि यह भाषा अंग्रेजों से पूर्व की है। यह भाषा अवधी और ब्रज के समकालीन की है। इसका उद्भव उस अपभ्रंश से हुआ जो हरियाने से तुलन्दसहर तक और मेरठ, मुजफ्फरनगर जिले तक बोली जाती थी। ११वीं शताब्दी में हेमचन्द्र के दान्दानुशासन नामक व्याकरण में इसके किञ्चित् रूप का आभास मिलता है।

उदाहरणार्थ—‘भत्ता हुआ जो मारिया, बहिणि म्हारा कन्तु’ में खड़ी बोली की आकारान्त प्रवृत्ति म्हारा, मारिया आदि में दृष्टिगत होती है। ११वीं शती के बीसलदेव रामो में चित्त भाट्या, मन उचट्या, मोती का आशा किया आदि वाक्य मिलते हैं।

इसके अनन्तर अमीर खुसरो का महत्व खड़ी बोली के कारण है। उनकी पहली ओर मुबारियों में तत्कालीन दृष्टि से खड़ी बोली का अधिक विकसित रूप दिखाई देता है। जैसे—‘लाखो का सर बाट दिया, ना मारा ना खून दिया। कबीर की बबिता में यदा-यदा खड़ी बोली का प्रभाव सन्निहित होता है। जैसे “उठा बबूला प्रेम का तिनका पड़ा अकाउ।” में ‘तिनका’ ‘का’ आदि शब्द खड़ी बोली के चोकर हैं।

हिंदी और उर्दू का सम्बन्धित रूप—हिंदी और उर्दू की निम्नता का भ्रान्त खड़ी बोली की कुछ विशिष्ट अवस्था में होने लगा था। ‘समभट्ट की अन्ध छंद बणें की महिषा’ नामक कृति में खड़ी बोली का परिभाषित नहीं तो महत्त्वपूर्ण रूप अवश्य मिलता है। तबड़, घाम, धास, तमास आदि शब्दों में एक तरह उर्दू के प्रभाव का सर्वत्र मिलता है। धरनी-पारनी के शब्दों का जो प्रयोग किया गया है। रामप्रसाद निरंजनी कुछ ‘रोमशाजिउ’ में उर्दू धारणी प्रभाव में कुछ खड़ी बोली शब्द का रूप मिलता है। १८८६ में दीनदत्तमल बख्शदाबादे कुछ ‘शैव पद्यपुराण’ का भाषानुवाद किया। भाषा में परिचय है। किशोर्देव और बिराज बिन्दा का कुछ प्रयोग नहीं ‘अपन हृदय’ अरबब की ‘दीरा हृदय की बदा’ तथा ‘अज्ञात’ तकक कुछ ‘अज्ञात’ का तुलसी में खड़ी बोली शब्द का विशिष्ट रूप मिलता है। १८९८ में उर्दू





पंजाब में इस शान्ति के फलस्वरूप हिन्दी का प्रचार सीधे-ता से हुआ। बाबू नवीन चन्द्र राय तथा राजा राममोहनराय ने ब्रह्म धर्म के प्रचारार्थ अनेक पुस्तकों का सज्जन किया। हिन्दी प्रचार में श्रद्धाराम किलौरी का योग महत्वपूर्ण है। उन्होंने कई पुस्तकें तथा 'भाग्यवती' नाम का उपन्यास लिखा। इनका गद्य सुलभ हुआ तथा प्रौढ़ था। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव साहित्य के क्षेत्र में भी पड़ा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा जय-धर प्रसाद के काल में अनेक कवि और लेखकों ने हिन्दी खड़ी बोली को समुन्नत तथा समृद्धिप्राप्ति बना लिया था। हिन्दी खड़ी बोली का क्षेत्र घागे जाकर इतना विस्तृत और अघाह हुआ कि उसमें कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, पत्र, जीवनियाँ आदि सभी समाहित हो गई। आधुनिक हिन्दी साहित्य भाषा का भाषा का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रश्न ४२—दक्षिणी भाषा के विकास और साहित्य का परिचय देते हुए खड़ी बोली से उसका सम्बन्ध बताइए।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में खड़ी बोली साहित्यिक हिन्दी के विकास में दक्षिण भारत के लेखकों, रियासत के नवाबों और उनके दरबारी कवियों, फकीरों आदि ने महत्वपूर्ण योग दिया है। इस कार्य में मुसलमानों का हाथ अधिक रहने और रचनाओं की लिपि फारसी होने के कारण इसे प्रायः उर्दू समझने की भूल होती चली आई है। दायें में दक्षिणी हिन्दी आधुनिक खड़ी बोली के आदि रूप का विवक्षित रूप है। प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डा० बाबूराम सक्सेना ने सम्भार अध्ययन एवं विवेचन द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि खड़ी बोली के विकास और समृद्धि में दक्षिणी रियासतों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण योग देकर उसे सुगम सामान्य काजीन राष्ट्रभाषा का रूप देने में सहायता की थी। खड़ी बोली के हिन्दी के प्राचीनकाल में तीन नाम प्रचलित—हिन्दवी, हिन्दी और दक्षिणी। हिन्दी अथवा हिन्दवी शब्द का अर्थ है—हिन्दी भाषा। महाकवि कालिदास हिन्दी से यह भाषा कई शताब्दों में भिन्न है। यह उत्तरीय जनजातों की भाषा थी। हिन्दवी शब्द बहुत प्राचीन अथवा, मुत्ता दखनी आदि प्रसिद्ध दक्षिणी विद्वानों ने इस भाषा स्पष्ट हिन्दवी शब्द का व्यवहार किया है। अन्य निदाडी, रतमो आदि



फारसी आदि के साहित्य के साथ भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्य का भी अभ्युपन अवश्य किया होगा। १७वीं शताब्दी तक के दक्खिनी भाषा के ग्रन्थों के लेखक सभी मुसलमान हुए। इसका कारण था कि हिन्दी के आदिकाल के विद्वानों की भाषा संस्कृत थी। साहित्य की भाषा अपभ्रंश थी। उस समय हिन्दू अपनी प्रचलित साहित्यिक भाषाओं—संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में साहित्य रच रहे थे। मुसलमान विदेशियों ने साधारण जनता की बोलचाल की भाषा को अपना कर साहित्य में उसका प्रयोग किया। भारतीय जनता के साथ संपर्क स्थापित करने के लिए इमीलिये उन्होंने इस प्रदेश की भाषा शीर-सेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी खड़ी बोली का सहारा लिया। मुस्लिम सत्ता और फकीर अपने धर्म का प्रचार तथा प्रसार करने के लिये इस भाषा का व्यवहार करने लगे। इस प्रकार श्रमशः मुस्लिम संस्कृति और राज्य-विस्तार के साथ साथ हिन्दी की भी व्यापकता बढ़ती गई।

उत्तर भारत में इस हिन्दी के सर्वप्रथम कवि प्रमीर खुसरो माने जाते हैं। इनकी हिन्दी बोल-चाल की भाषा थी, जिसमें खड़ी बोली के साथ कुछ शब्द भाषा का घुट भी था। खुसरो के समकालीन सत प्रतीकलदर का दोहा भाषा की दृष्टि से पठनीय है—

सजन सकारे जायेंगे और नैन मरेंगे रोय ।

किपना ऐसी रैन कर और कभी न होय ॥

इस प्रकार भारत में खड़ी बोली में वाच्य-निर्माण १५वीं शती तक का प्राचीन उपलब्ध होता है। उसके उपरान्त यह परम्परा कई शतियों तक गुप्त रही। 'उस समय भारतीय परम्परा में उच्च श्रेणी का संस्कृत साहित्य रचा जा रहा था तथा प्राकृत और अपभ्रंश में वाच्य, नाटक, कहानी आदि रचा जा रहे थे तथा विदेशी परम्परा बढ़िया मार्को की थीजें फारसी में लिखने पर जन-साधारण के समझने योग्य सिद्धांत और बिरसे-कहानियाँ हिन्दी लिख देने थे।' यह विदेशी परम्परा खड़ी बोली को साथ लेकर १८वीं से दक्षिणी प्रदेशों में मुगलमानी पीढ़ी, छठी और दसवीं के साथ दक्षिणी भारत का पारस से सीधा संपर्क बर्नी नहीं रहा। उसका उत्तरी भारत के मुस्लिम शासकों से था। इसी से हिन्दी यहाँ मूढ़ प।



हफोज़ दक्खिन चले गये। परन्तु इन नवीन कलाकार की कृतियों में 'दक्खिनी' की विशेषताएँ तुल्य होने लगी। इन पर फारसी का गहरा रंग चढ़ गया था।

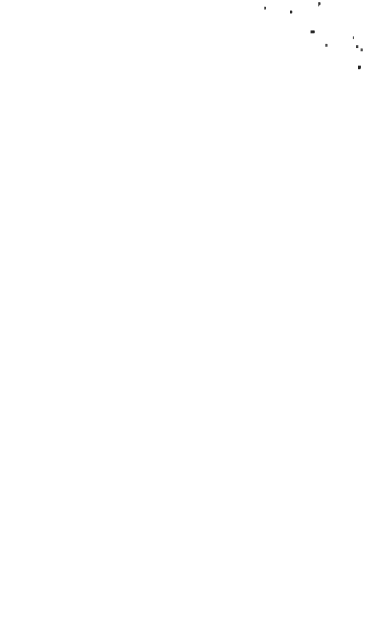
अब तक दक्खिनी के सभी कलाकार मुसलमान हुए परन्तु आसफ़ज़ाही राज्य में कुछ हिन्दुओं ने भी इस भाषा में रचनाएँ की, जिनमें लाला मोहन-लाल 'मेहज़ाब' और लाला लछ्मीनारायण 'शरीफ़' उल्लेखनीय हैं। बीसवीं शताब्दी तक आने-आते तो हैदराबाद ही इस भाषा का एकमात्र पोषक रह गया। परन्तु इस समय तक भाषा अपना स्वाभाविक स्वरूप खोकर उर्दू का रूप धारण कर चुकी थी। अब यहाँ के सभी साहित्यकारों की भाषा खालिस उर्दू है। फिर भी दो-एक कवियों ने दक्खिनी को अपनाया है इसमें 'हलम' की टुमरियाँ और भ्रमरत के हिन्दी छंद अच्छे बन पड़े हैं। संक्षेप में आधुनिक शरी बोर्ल' की पूर्वज हिन्दी, हिन्दवी या दक्खिनी भाषा के उद्गम और विकास की यही कहानी है।

साहित्य की दृष्टि से दक्खिनी गद्य में मसनवियाँ प्रचुर हैं। निजामी की मसनवी 'बंदमराब व पदम' दक्खिनी की प्रथम मसनवी है। वजही की कुतुब मुस्तरी मौलिक रचना है। जायसी के पद्यावत की कथा पर आधारित गुलाम भली वृत्त दक्खिनी की मसनवी 'पद्यावत' है। मुक़ीमी की मसनवी 'चन्दर वदन' है। इन मसनवियों के अनिरिक्त ग्रहमद लुर्देसी की माहू पैकर, सेबक की जग-नामा और मुस्तान इब्राहीम की नवरस उल्लेखनीय हैं।

अतः यह सारा साहित्य हिन्दी या आदि साहित्य कहा जा सकता है पर इसकी निधि फारसी है। हिन्दी वालों को दुर्बोध है। यद्यपि हिन्दी की दक्खिनी शाखा के लेखक प्रायः मुसलमान थे फिर भी उनमें भारतीयता और देशीयन पराप्त था।

प्रश्न ६१—देवनागरी के उद्गम और विकास पर एक लेख लिखिये त उसके गुण और दोषों का विश्लेषण करते हुए कुछ सुधारमूलक सुझाव कीजिये।

भाषा और निधि का पारस्परिक सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ है। निधि का आधार तथा धरोहर है। भाषा और निधि दोनों ही विचार-विमल माध्यम तथा भाव-प्रवाहन के सर्वत हैं। भाषा का किन्हीं पाँच लिखित

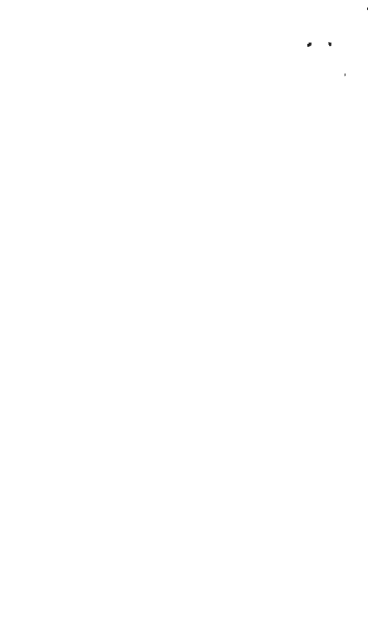


है। देवनागरी लिपि की एक विशेषता यह है कि इसमें जो कुछ लिखा जाता है उसका उच्चारण पूर्ण रूपेण उसी प्रकार किया जाता है। विश्व की अन्य लिपियों में यह गुण नहीं है। रोमन तथा उर्दू लिपि में अनेक ध्वनि-सकेत नहीं हैं। साथ ही उसमें लिखा कुछ जाता है और उसका उच्चारण अन्य प्रकार से किया जाता है। एक ही वर्ण का प्रयोग विभिन्न शब्दों में करने से इसका उच्चारण भी बदल जाता है। परन्तु देवनागरी लिपि में ऐसा नहीं होता। वहाँ एक निश्चित ध्वनि के लिए सदैव एक निश्चित वर्ण का प्रयोग ही उचित माना गया है। इसी कारण इसको वैज्ञानिक लिपि माना गया है।

हिन्दी प्रदेश में अनेक लिपियों के होते हुए देवनागरी लिपि का स्थान सर्व-थेष्ठ एवं उच्च है। मुद्रण में तो अधिकामत्र इसी का व्यवहार किया जाता है। इस लिपि में स्वर और व्यंजन के सैद्धान्तिक सकेत वर्तमान हैं। इतना ही नहीं उच्चारण अवयव, आन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्नों के सिद्धान्तों पर जो वर्गीकरण किया गया है। इन्हीं के प्रतीक देवनागरी के स्वर और व्यंजन के वर्ण हैं। उदाहरणार्थ अ, आ, ए, उ, इ आदि के उच्चारण में जिस प्रकार की मुष्णावृत्ति बनती है, उसी में मिलते-जुलते ये वर्ण बने हैं। 'अ' के उच्चारण में मुख आधा खुलता है और जिह्वा की स्थिति मध्य में होती है। 'आ' की मात्रा उसके पूरे खुलने की छोटक है। 'उ' में भी मुँह के बन्द होने का स्वरूप है। 'ए' और 'ऐ' की दोहरी मात्राएँ (१, २) मुँह के जबड़ों के दोहरे चलने का छोटक है। एक अंग्रेज भाषा वैज्ञानिक ने हिन्दी वर्णमाला की वैज्ञानिकता की परीक्षा करने के उद्देश्य में उन वर्णों के स्वरूप के मिट्टी के खोपने रूप बनाये। उनमें उनके भीतर जब स्वर फूँका तो इनमें से उन्ही स्वरों की ध्वनि सुनाई दी। यह घटना इस लिपि की वैज्ञानिकता का सर्वथेष्ठ प्रमाण है।

हिन्दी वर्णमाला के स्वर तथा व्यंजनों में अन्तर है। स्वरों के उच्चारण में स्थानों से बिना टकराये हुए स्थावर ध्वनि निकल जाती है जब कि व्यंजनों में प्राणवायु उच्चारण-स्थानों के स्पर्श या घर्षण करती हुई चलती जाती घट। सैद्धान्तिक दृष्टि से स्वर और व्यंजन पृथक् पृथक् होने चाहिये। देवनागरी लिपि में ऐसा ही है।

उच्चारण-स्थानों के अनुसार स्पर्श व्यंजनों के पाँच वर्ग कर दिये ग





बंगला । उत्तर भारत की अधिकांश प्राधुनिक लिपियाँ नागरी लिपि की सन्तान हैं । इस कारण वर्तमान देवनागरी लिपि से इनका निकट का सम्बन्ध और सादृश्य है । बाह्यो की दक्षिणी शैली के अन्तर्गत, पश्चिमी, मध्यप्रदेशीय, सेतगु, कन्हडी, ग्रंथ लिपि, कर्नाट लिपि तथा तामिल लिपि का प्रादुर्भाव हुआ ।

छाठवीं शताब्दी से नागरी लिपि की प्रभुता बराबर रही है । राजस्थान, उ्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश में दसवीं शती के समस्त शिलालेख आदि इसी लिपि में लिखे गए हैं । प्राधुनिक देवनागरी लिपि प्राचीन नागरी लिपि का ही विकसित रूप है । गत सौ वर्षों में मुद्रण के आविष्कार ने संयुक्त व्यंजनों के ऊपर नीचे से सम्मिलित रूपों (झ, ञ, ण, आदि) हटाकर प्राये पीछे लिखे हुए रूपों (ज्, ञ्, ण् आदि) को ही अधिक प्रयुक्त किया है ।

आज नागरी लिपि का उत्तरोत्तर विकास हो रहा है । हिन्दी, संस्कृत तथा मराठी की यही एकमात्र लिपि है । नेपाल की यही राजलिपि है । मियान्मार और भूटान सम्मान हो रहा है तथा भारत की लिपि भी यही मानी गई है ।

## परिशिष्ट

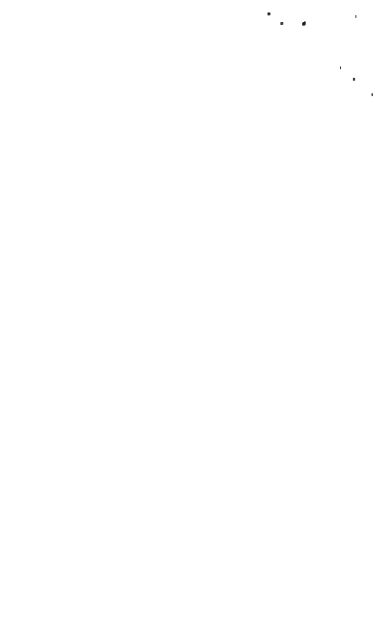
अन ४४—स्पष्ट कीजिये—

(क) भाषा की परिभाषा, (ख) भाषा अर्जित सम्पत्ति है, (ग) भाषा व्यवस्था से ब्योक्तव्यता की ओर जाती है, (घ) भाषा-वक्ता, (ङ) भाषा सामान्य प्रवृत्तियाँ ।

(क) भाषा की परिभाषा—भाषा विचार की अभिव्यक्ति तथा विचार-प्रय का साधन है । दूसरे शब्दों में विचार की अभिव्यक्ति के लिए सर्व साधन जो समाज के द्वारा स्वीकृत हैं और जिनका व्यवहार होता है; भाषा है ।' साधन-रूप से विचार साधन से हम अपने विचार का भाव । तक पहुँचा सकें, वह भाषा है ।"

डा० आनन्दराज त्रिपाठी व भाषा-विज्ञान में दो हुई परिभाषा —

"भाषा उच्चारणसदृश से उच्चरीय अभिव्यक्ति-संकेतों का एक



अपिन्नु उमे दूसरो के समगं मे रहकर ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। एक बालक अपनी मातृभाषा के समान अन्य भाषा भी समझना मे सीख सकता है। इसके अनिवार्य मनुष्य प्रयत्न के द्वारा अनेक भाषाओं का ज्ञान हो सकता है। आज ज्ञान मे रहने वाले बालक ज्ञान के बोग केवलिक भाषा ही नहीं अपिन्नु वैदिक-पुत्री केच भाषा भी बोलने है। इससे स्पष्ट है कि भाषा समग ओर प्रयत्न मे उन्नति की जाती है। अन्य भाषा पश्यनगणन सम्पत्ति ज्ञान के साथ साथ अज्ञान भी है।

(ग) भाषा सयोगावस्था मे त्रियोगावस्था की ओर जाती है— भाषा सामाजिक समस का परिणाम है। समाज के विकास के साथ भाषा मे भी विकास अनिवार्य है। भाषा के व्यवस्थापक के द्वारा भाषा मे उन्नति कर जा सकता है कि भाषा की प्रवृत्ति महत्ति मे व्यवस्था की ओर गयी है। भाषा अति बाल मे समझ, अज्ञान ओर स्थित रहता है। अतः भाषा के माध्यम ओर मुख्य जानी जाती है। सभी भाषाओं के विकास मे यह स्पष्ट है कि भाषा अतिवृत्ति मे समझ की ओर अग्रसर होती है। मानव का यह अग्रसर रहना है कि वह कम से कम प्रयत्न मे अधिक से अधिक भाषा जान सकता है। इसी प्रयत्न केवल मे वह भाषा का समझ करने लगता है और बाद मे वह बहुत ही काम आता है। भाषा एक महत्त्वपूर्ण अंग है जो हमारे जीवन मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।



## व्याकरण

भाषा-विज्ञान और व्याकरण का घनिष्ठ सम्बन्ध है। व्याकरण भाषा-विज्ञान के लिए सामग्री प्रस्तुत करता है और भाषा-विज्ञान व्याकरण को दायें-बायाँ करता है। व्याकरण भाषा की माधुना तथा अमाधुना पर विचार करता है परन्तु भाषा-विज्ञान भाषा की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है और भाषा के मूल रूपों और वारणों की खोज करता है। व्याकरण प्रगतिवादी न होकर प्राचीनतावादी है और नवजात रूपों को असाधु मानता है जबकि भाषा-विज्ञान का सम्बन्ध भाषा के 'जीवित रूप' से है। व्याकरण नियम, उपनियम तथा अपवाद का सविस्तार विवेचन करता है तथा भाषा के निष्पन्न रूपों को अपनाना है और भाषा-विज्ञान प्रत्येक शब्द-रूपों की व्याख्या तथा इतिहास प्रस्तुत करता है। भाषा के प्राचीन रूप का विकास कैसे हुआ, भाषा-विज्ञान इस वारणों की खोज करता है। अतः भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अधिक व्यापक तथा अधिकृत है। व्याकरण 'क्यों' का उत्तर देता है और भाषा-विज्ञान 'क्यों' और 'कैसे' का उत्तर देता है। अतः भाषा-विज्ञान व्याकरण का भी व्याकरण है। साहित्य

भाषा-विज्ञान भाषा के अध्ययन के लिए प्रायः समस्त सामग्री साहित्य ही ग्रहण करता है। भाषा और रूप-परिवर्तन का ज्ञान कराने वाली सामग्री हमें साहित्य में ही स्थित मिलती है। भाषा के ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन में हमें साहित्य से ही सहायता मिलती है। मगध, अलेक्सा तथा ग्रीष्म आदि प्राचीन साहित्य के आधार पर ही हम इन तीनों को एक परिवार मानते हैं। अतः भाषा की प्राचीन निधि साहित्य में सुरक्षित मिलती है। हिन्दी भाषा की मूल प्रकृति को जानने के लिए भाषा-विज्ञान अपभ्रंश, प्राकृत, नर्तक तथा बर्दिक साहित्य को ध्यान देता है और इसका समबद्ध रूप साहित्य उत्पत्ति होता है। मगध, परिवर्तन आदि वारण साहित्य तथा वाङ्मय आधार पर निश्चित किये जाते हैं।

## मनोविज्ञान

भाषा-विज्ञान और मनोविज्ञान में वर्णन सामान्य है। भाषा विचारिणी है तथा विचारों का संधान सम्बन्ध मन्त्रिक तथा मनोविज्ञान मनुष्य की दृष्टि-शक्ति में भी भाषा का बहुत कुछ सम्बन्ध है। भाषा-विज्ञान भाषा की धार्मिक गुणियों को गुणभान में मनोविज्ञान से



प्रकाश डाला गया है।

### शरीर-विज्ञान

शरीर-विज्ञान और भाषा-विज्ञान का गहरा सम्बन्ध है। भाषा का मनुष्य के शारीरिक गठन से पर्याप्त सम्बन्ध है। भाषा मुख से निःसृत ध्वनि है, अतएव स्वन वायु की गति, स्वर-यंत्र, स्वरतंत्रो, नासिक-विवर, तालु, दाँत, जीभ, ओष्ठ, कंठ, मूर्द्धा आदि अवयवों का कार्य तथा कान द्वारा ध्वनि का ग्रहण आदि समस्त पद्धति का ज्ञान शरीर-विज्ञान के बिना सम्भव नहीं है। ज्ञानतन्त्रु भस्तिष्क से मुख, नासिका आदि अवयवों को प्रेरित करने है। लिखित भाषा का ग्रहण भी नेत्रेन्द्रिय में होता है जो शरीर-विज्ञान का एक अंग है।

### इतिहास

भाषा-विज्ञान और इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी देश में किसी अन्य देश का राज्य स्थापित होना दोनों ही देशों की भाषा को प्रभावित करता है। हिन्दी में फ़ारसी, फ़ारसी, तुर्की, पुर्तगाली तथा घेरेजी शब्दों का बाहुल्य राजनीतिक परतन्त्रता तथा राजनीतिक सम्बन्ध की ओर संकेत करता है।

भाषा का ऐतिहासिक या गुरुनात्मक अध्ययन इतिहास के तमिग्याच्छत्र गृहों पर भी प्रकाश डालता है। भाषा-विज्ञान की महात्मा से तत्कालीन भाषा के आधार पर प्रागैतिहास काल के समाज का अध्ययन किया जाता है। भारोपीय परिवार के अध्ययन में मूल भारोपीय लोगों की सामाजिक दशा तथा धार्मिक प्रवृत्तियों का परिचय प्राप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ प्राचीनतम धर्म परिवार बनाकर रहने में तथा परिवार में अनेक सम्बन्धों का प्रमाण यन्त्रों के अस्तित्व से प्राप्त हो जाता है। धर्मों के मूल निवास-स्थान की खोज भी इसी आधार पर हो रही है।

### समाज-शास्त्र

भाषा विचार विनिमय का साधन है। समाज में ही मात्र मानवीय म का आदान-प्रदान भाषा के माध्यम से ही होता है। अनेक सार्वजनिक म को समाज ने स्वीकार किया है वही भाषा बन गई है। अने भाषा म सम्पन्न न होकर समष्टिगत है। ईरान में 'दर' उन्म अगुध बना जहाँ भारत में पुन अने म रचना प्रदीव होता है। अभाद् अलोक मशहूर दबारा विश्व का अने बाद म मूख हो गया। सागत यह है

*[Faint handwritten notes at bottom left]*



से इनके गण्डों के योग को प्रक्षिप्त कहा जाता है।

(३) प्रक्षिप्त योगात्मक—इसमें केवल प्रत्ययों का प्राधान्य रहता है और प्रत्ययों से ही सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। इन वाक्यों में मूल गण्ड और सम्बन्ध-तत्त्व को प्रकट करने के लिए प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। इसी कारण इन वाक्यों को 'प्रारम्भिक गठन वाले वाक्य' की सजा से विभूषित किया जाता है।

(४) क्षिप्त योगात्मक—ये विभक्ति प्रधान वाक्य कहे जाते हैं। विभक्तियों का प्रयोग प्रक्षिप्त योगात्मक की भाँति प्रत्यय रूप में होता है। पर दोनों में अन्तर यह है कि प्रक्षिप्त में प्रत्यय स्पष्ट रहते हैं और क्षिप्त में इनका स्पष्ट पता नहीं चलता है। जैसे राम+मु (प्रथमा, एक व०)=रामः (यहाँ मु का पता नहीं चलता है। इसी प्रकार कहीं-कहीं तो सयोग में प्रत्यय पूर्णतया लुप्त हो जाता है, यथा लता+मु=लता (मु का सर्वथा लोप हो गया है। व्याकरणिक गठन की दृष्टि से वाक्य के तीन प्रकार हैं—(१) साधारण वाक्य, (२) संयुक्त और (३) मिश्रित वाक्य।

भाव या अर्थ की दृष्टि से वाक्य के भेद—

- (१) विधान सूचक—राम जाता है।
- (२) निषेध सूचक—राम नहीं जाता है।
- (३) आज्ञा सूचक—यह काम करो।
- (४) प्रश्न सूचक—तुम वहाँ रहते हो ?
- (५) विस्मय सूचक—अरे ! यह क्या हुआ।
- (६) यह गया होगा।

ग्रन्थ के आधार पर—(क) क्रियायुक्त वाक्य, (ख) क्रिया विहीन वाक्य (मुद्गारे, लोकोक्ति तथा विज्ञापन आदि में ऐसे वाक्यों का प्रयोग होता है।) वाक्य-गठन में परिवर्तन के कारण

(१) अन्य भाषा का प्रभाव—जब कोई भाषा अन्य भाषा से प्रभावित होती है तो कभी-कभी उसके वाक्य गठन में भी उस प्रभाव के फलस्वरूप परिवर्तन आ जाता है। हिन्दी में पारसी और अंग्रेजी के प्रभाव के कारण परिवर्तन आ गये हैं। 'कि' लगाकर वाक्य बनाने की परम्परा पारसी की है। नेहरू आदि की भाषा में अंग्रेजी के प्रभाव से विशा के बाद नमं प्रवृत्ति मिलती है।

(२) ध्वनि-विकास के कारण विनिरितयों का पित्त जाना—विज्ञान के साथ जब सम्बन्ध उत्पन्न करने वाली विभक्तियाँ



यह अभिकाकल नीचे की ओर झुककर श्वास-नालिका को बन्द कर देता है और भोजन या पानी आगे सरक कर भोजन-नालिका में चला जाता है। श्वास-नालिका के ऊपरी भाग में अभिकाकल के नीचे ध्वनि उत्पन्न करने वाला प्रधान अवयव होता है जिसे ध्वनि-यन्त्र या स्वर-यन्त्र कहते हैं। बाह्य गले में जो उभरी घांटी दिखाई देती है, यह वही है। स्वर-यन्त्र में पतली भिन्नी के बने दो लवचने पदों का बपाट होने है उन्हें स्वर-लवची या स्वर-रज्जु कहते हैं। ध्वनियों उत्पन्न करने के लिए स्वरलवचियों एक दूसरे के समीप आती हैं और दूर हटती हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार की स्थितियाँ उत्पन्न होकर अनेक विभिन्न ध्वनियों की उत्पत्ति होती है। इनमें घंघ, अघोष, अल्पप्राण तथा महाप्राण ध्वनियों उच्चरित होती हैं। जंभ के स्वरण के माम का छोटा सा भाग उस स्थान पर होता है जहाँ में नासिका-विवर और मुख-विवर के गमने करने हैं, इसे बौचा या अर्निजिह्व कहते हैं। बौचा की मध्य स्थिति में अनुनासिक वणा तथा इसके नासिका-विवर का रोवने पर माधारण वणा या उच्चारण प्राण है। मुख-विवर के ऊपर की छार नालु है जिसके बण्ट स्थान और दोता २ बीच में प्रस में छार भाग है—१ कामल नालु, २ मड्डा ३ कटार नालु तथा ४ वन्म। जिह्वा के विभिन्न भागों का इनमें स्थिति बराबर विभिन्न ध्वनियों उत्पत्ति की जाती है। मुख-विवर के निचले भाग में जिह्वा है। वातन में वायु प्रवाह या प्रवेश आहूति या गूँज-विवर बनाने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। जिह्वा के पाँच भाग हैं—मूल पद, मध्य, अग्र तथा तीक्ष्ण। जिह्वा दात या हाड में स्थित विभिन्न ध्वनियों का निष्पादन करती है। यह मूलतः छार में ध्वनि उत्पन्न का कार्य है।

(ख) आपल-ध्वनि और ध्वनिमात्र का अन्तर—आपल ध्वनि मरेता का गूँह मात्र है। ध्वनि से ध्वनिमात्र आपल ध्वनि और वन ध्वनि सामान्य तीता का अर्थ लिया जाता है। वन का सामान्य अर्थ वनमात्र न है। आपल ध्वनियों द्वारा उत्पन्न निश्चित ध्वनि गुण वाली ध्वनि आपल ध्वनि है। ध्वनि में किसी भी गुण के कारण विभिन्न भी विचार उत्पन्न होता है तो वह किञ्च-ध्वनि एक अन्य प्रकार की होती है और दूसरी ही ध्वनि होती है। अनेक आपल ध्वनियों में इन प्रकार का आपल ध्वनि बहुत अधिक होती है पर उन सभी के लिए पृथक्-पृथक् विचार संभव नहीं होते हैं क्योंकि कई ध्वनियों सम्बन्ध आपल में विद्यमान हैं ही प्रमुख होती हैं। आर ऐसी अनेक आपल-







सरकृत के द्विवचन का प्रयोग युग्म शब्दों के लिए होता था—जैसे पिता, पाली, नणी आदि । बाद में बिलोम युग्म तथा द्वन्द्व समास में भी सादृश्य के आधार पर इसका प्रयोग चल निकला, यथा लाभलाभी, सिंह शृगादी आदि ।

अंग्रेजी में Shall और will के रूप Should और would के समान पर can का could हो गया। अस्मभाविक रूप में could में I का आगम हो गया। विद्यार्थी या नए सीखने वाले अधिकांश रूपों का निर्माण सादृश्य के आधार पर कर लेते हैं। जैसे नया छात्र Box में Boxes का दसक उसी सादृश्य पर Ox से Oxes कर देता है जबकि शुद्ध रूप Oxen है। इसी प्रकार मर में मरा धर से घरा के आधार पर कर में बरा और बैठाए, निशान को देखकर कणिक कह उठता है यद्यपि परिनिष्ठित रूप 'किरा और 'कारिजा' है।

सादृश्य के विस्तार के प्रधान कारण भुविधा या मन्वत्वा ही सादृश्य का प्राण है।

(क) अभिव्यक्ति की कठिनाई या एक भाव के लिए दो विभिन्न शब्दों का जटिलता से बचने के लिए जन-प्रतिष्ठा एक से रूप बना लेना है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष के रहने पर भी पादचाप के माध्यम पर पोषाच्य का रहना की गड़।

(ख) रूप की अनिलक्ष्यता से या अधिक स्पष्टता लाने के लिए रूप बना लिए हैं, यथा 15m के आधार पर Socialism और जमन and के 6-7 पर toward आदि रूप गृह्य हुए ।

(ग) सम्मानता या विषय पर इन दो के लिए साक्ष्य का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ सम्बन्ध में स्वसृष्टि या भातृ का स्वसृष्टि भातृ कृपा के साक्ष्य पर निर्वाह द्वायान्त होने का भी प्रमाण रूप प्रमाणित हो गया। ६- प्रमाण सम्बन्ध में भीतर के आधार पर बाह्य का बाह्य रूप बन गया, ७- प्रमाण पर इन दो के लिए निर्माण के साक्ष्य पर प्रमाण का प्रमाण बन गया।

(घ) बिग्री प्रशोधन या तबान नियमक से केवलित क विषयों का एहसास दिया जाता है और एक प्रत्यक्ष जानकारी के रूप में यह सुनिश्चित कर दिया जाता है कि इस प्रकार की जानकारी को सही समय पर प्राप्त किया जा सके।

[illegible]























है, यह उच्च हिन्दी कहावानी है। यूरोपीय विद्वान् इसी को उच्च हिन्दी प्रयत्न मानने कहते हैं। प्रायः मिश्रित हिन्दू इसी भाषा का प्रयोग करने हैं। इसी हिन्दी में वर्तमान युग का साहित्य निर्मित हो रहा है और यहाँ राष्ट्रभाषा के गिहामन को भी सिंभूयित कर रहा है।

रेख्ता—फारसी शब्दों के अधिक मिश्रण के कारण कविता में प्रयुक्त उर्दू को रेख्ता (मिश्रित) कहते हैं। इसका व्यवहार मुगलसाल के उत्तरार्द्ध में दिल्ली तथा लगनऊ के दरबारी मुगलमानों कवियों ने किया। घन मुगलमानों ने उर्दू के इन उन्नत और साहित्यिक रूप को रेख्ता नाम दिया। डा० ज्याम-मुश्तरदाम ने 'रेख्ता' का अर्थ 'मिश्रित' या 'पड़ना' किया है। सम्भवतः मुगलमानों की इसी गिरी या खड़ी बोली के रेख्ता नाम का विरोध सूचित करने के लिए दिल्ली, मेरठ प्रान्त की भाषा का नाम 'खड़ी बोली' पड़ गया हो।

सर विनियम जोस (१७४६-१७६६)—जोस साह्य बलबन्ता हाईकोर्ट में चीफ जस्टिस थे। यही आपने संस्कृत का अध्ययन कर यूरोपीय भाषाओं में एक साम्य गुरु देखा। १७६६ में रायल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की और संस्कृत के महत्व की घोषणा की और इसे ग्रीक तथा लैटिन में भी श्रेष्ठ बताया। इन घोषणा के पश्चात् यूरोपीय विद्वानों का ध्यान संस्कृत की ओर आकर्षित हुआ।

योकोब ग्रिम (१७८५-१८६३)—इनका जन्म जर्मनी में एक वकील के घर हुआ था। प्राचीन जर्मन भाषा का इन्होंने अध्ययन किया तथा मगोत्रीय भाषाओं में इसकी तुलना की। ग्रिम की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक उनका देवभाषा व्याकरण (Deutsche Grammatik) है। यह जर्मन भाषा का व्याकरण १८१८ में प्रकाशित हुआ। इसके दूसरे संस्करण में ध्वनि-प्रकरण में एक नवीनता थी तथा उसमें वर्ण-परिवर्तन का विवेचन किया गया है, जिसे बाद में ग्रिम-नियम कहा जाने लगा था। जीवन के अन्तिम चरण में ग्रिम बर्लिन में अध्यापक थे और अन्त तक भाषा-विज्ञान सम्बन्धी कार्य करते रहे थे।

फ्रान्स बॉप—इन्होंने पेरिस के आकर संस्कृत का अध्ययन किया। बॉप तुलनात्मक भाषा विज्ञान के पिता कहे जाते हैं। १६वीं सदी के दूसरे चरण में इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'तुलनात्मक व्याकरण' प्रकाशित हुई। तुलनात्मक व्याकरण की प्रथम पुस्तक यही है। विद्वान् लेखक ने संस्कृत, जैद, अरमीनियन, ग्रीक, लैटिन, लिथुआनियन, प्राचीन स्लावियन, गोथी तथा जर्मन का तुलनात्मक व्याकरण दिया है। ये संस्कृत, ग्रीक, लैटिन का 'मूल स्रोत' एक मानते











जैसे अंग्रेजी शब्द "शॉप" का मूल हिन्दी शब्द 'बापना' से है, पर अंग्रेजी माना जाता है। (c) दो भाषाओं के शब्दों में अर्थ और ध्वनि को दृष्टि से साम्य होने पर अनिश्चित दशा में एक परिवार और वर्ग के जानने पर उसकी व्युत्पत्ति के लिए आदि जननी मूल भाषा का समान शब्द ले लेना चाहिए। जैसे स० पितृ, मा० फादर, हिन्दी पिता आदि।

**भाषा पर आधारित प्रागैतिहासिक खोज (Linguistic Palaeontology)**—भाषा विज्ञान की यह शाखा इतिहास, सम्प्रदाय और संस्कृति की दृष्टि में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस खोज से इतिहास के उस अन्धयुग पर जिसके सम्बन्ध में कोई सामग्री प्राप्त नहीं, भाषा के सहारे प्रकाश डाला जाता है। इसमें किसी भाषा के प्राचीन शब्दों को लेकर उस कुल की अन्य भाषाओं के प्राचीन शब्दों की तुलना के आधार पर उन शब्दों का सम्यक् विवरण कर उनके सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक पक्षों पर विचार किया जाता है। जानवरों के नाम, साथ साथ ही प्रवृत्ति, पर्वत, नदी, पेड़-पौधे तथा ऋतु से सम्बन्धित शब्दों के आधार पर उसके यथार्थ स्वरूप की सम्भावना पर विचार तथा अनुमान किया जाता है। किन्ना 'शब्दों' से उनके सामाजिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। इसमें मानव-विज्ञान, पुरातत्व (Archaeology), भूगर्भ विद्या (Geology) भूगोल तथा इतिहास से सहायता लेनी पड़ती है।

**वेदों में प्राकृत-तत्त्व (Prakritism in Veda)**—स्वाभाविक रूप से सारल्य प्रवृत्ति भाषा के विकास की जान है। यही सरलता की भावना भाषा के आदि काल से चली आ रही है। दूसरे शब्दों में भाषा के सम्बन्ध में इसे हम प्राकृत-तत्त्व भी कह सकते हैं। क्योंकि सामान्य लोगों में सहज रूप में बोली जाने वाली भाषा प्राकृत कहो जाती है। इसका विशेष गुण सहज-वचन-व्यापार है। प्राकृत वैयकरण अधिकतर यही मानते हैं कि प्राकृत भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं। दूसरे और आधुनिक विद्वान् इस मत से सन्तुष्ट नहीं, क्योंकि वे यह मानते हैं कि प्राकृत संस्कृत से उत्पन्न न होकर वैदिक काल की बोलियों में विद्यमान हुई है। यह प्राकृत तत्त्व वैदिक युग की भाषा में वर्तमान था। जैसा कि विद्वान् मानते हैं। कुछ वैयकरण इसका विवरण 'प्राक् - कृत अर्थात् पहले बन' हुई करते हैं और इस रूप में संस्कृत के पहिले की मानते हैं। यदि हम संस्कृत शब्द का यह अर्थ न लेकर वैदिक काल की उत्पन्न वैयकरणिक प्रवृत्ति के अन्तर्





स्वर-ध्वनियाँ निम्न हैं—

स्वर : ऐ (e), ए (e) ओ (o), ओ (o), तथा (ऌ) (ऍ) (यह स्वरहीन (unaccented) ए' e का रूप था) । विद्वानों के मतानुसार इन पाँचों स्वरध्वनियों का मूल ए' (e) -वर्तन हो था, मत्र उमी में विकसित हुए थे ।

चित्र-लिपि—मित्र छात्र देशों में चित्र-लिपि में भाव व्यक्तिकरण की परिपाटी प्रचलित थी । पत्थर हड्डी काष्ठ, मीष ज़रथी दान, पड़ की छान जानवरों की खाल तथा मिट्टी के बरतन आदि पर ये चित्र बनाये जाते थे । मैसा पोटामिया तथा सुमेरु जालि में नरम ईंटों पर कीता जाग चित्र बनते थे । ईरान के बादशाह दारा (५०० ई० पू०) के पुगने के वाक्षर नग्न प्राप्त हुए हैं । ये चित्र इस प्रकार से थे जैसे दोड़ते हुए बछड़े के पाम पानी का चित्र होने से प्यास के भाव को प्रकट किया जाता है । धर्म्यवक्त्र का व्यक्ति व चित्र से दुर्भिक्ष का भाव प्रकट किया जाता था ।

सूत्रलिपि—प्राचीन बाल में सूत्र, रस्सी तथा पड़ा की छान आदि में गोंट की जाती थी । किसी बात को याद करने की प्रवृत्ति का भी यह लिपि दातक है । आज भी रमण के लिए जाग रुमान आदि में गोंट दते हैं । पुरुष में केशों नाम की शर्यती होती है । इन रंगों धरवा धागा में इनमें कुछ बीरर शिखर प्रकार की रमृनिया और धर्यों का सदन मिल जाता है । जैसे मरेद हागे गान तथा मान जालि का प्रतीक है । ये मरेन उलगी धमरिका का जर्जिया में प्रचलित है ।

ब्राह्मी लिपि—यह लिपि भारत की गण्टावर्षाव था । कुछ विद्वान इस लिपि का उत्पत्ति दोष पनाली धसोरु बीलाधर तथा नामा के किता का कर स मानते हैं । ब्राह्मण में ब्राह्मी लिपि भारतवर्ष का भीतक धर्मिकार है । इसकी प्राचीन सर्वाङ्ग गुन्दरता में आह इसका कना बला माना गया हा जा बीक्षर समाज तथा ब्राह्मणों की लिपि हान ब ब्राह्मी कहलाई हा पन्नु इसका बिदली लिपि के रूप में बाई भी दोष प्रमाण नहीं मिला है । भारत में ब्राह्मणों के भी इस मत का समर्थन किया है । ई० पू० ३०० से २२० ई० तक ब्राह्मण ब्राह्मी का प्रचार रहा । बाद में इससे धरक लिपियों का र-व हुआ । जैसे गुप्त लिपि, बुद्ध लिपि, नागरी और धारवा लिपि, इनके बीतक धर्मिक लिपि ब्राह्मी ।



Acc. No. 1340  
Class No. \_\_\_\_\_ Book No. \_\_\_\_\_

Author महेश प्रसाद

Title जुबिली काव्य-प्रश्न

श्री जुबिली नागरी भंडार  
पुस्तकालय  
बोकानेर ।

१. पुस्तक १४ दिन तक रखी जा सकती है ।
२. अन्य सदस्य से भाग न होने पर ही पुस्तक पुनः दी जा सकेगी ।
३. पुस्तक को फाड़ना तथा बिहिस्त करना नियम के विरुद्ध है ।
४. पुस्तक फाड़ने, खोने पर मूल्य या पुस्तक देनी होगी ।

पुस्तक को रखण्य व सुन्दर रखने में  
सहायता कीजिये ।







